UNIVERSAL LIBRARY
OU_178736
UNIVERSAL LIBRARY

दूर की कौड़ी

(कहानी संग्रह)

मन्मथनाथ गुप्त

चेतना प्रकाशन लिमिटेड
हैदराबाद

प्रकाशक :
देवेन्द्रकुमार गोस्वामी
मेनेजिंग डायरेक्टर-
चेतना प्रकाशन लिमिटेड
आबिद रोड, हैदराबाद

प्रथम संस्करण १९५०

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य दो रुपया आठ आना

मुद्रक :
केदार शर्मा
व्यवस्थापक :
कमर्शियल प्रिंटिंग प्रेस
हैदराबाद

१	राजनीति	१
२	सोख्ते का टुकड़ा	१३
३	महान अमीर ने अखबार निकाला	३६
४	यन्त्र का मूल्य	५०
५	तीसरी बीबी	५५
६	वाइसराय का मैडल	६३
७	महायुद्ध का देन	७५
८	देशभक्त का अन्त	८६
६	पन्द्रह रुपये बारह आने	१०६

राजनीति

सेठ रामनाथ बैठ कर हुक्के का धुआं छोड़ते जाते थे, और सोचते जाते थे। उन्होंने लड़ाई के जमाने में करोड़ों नहीं, तो एक करोड़ रूपये जरूर कमाये थे। लड़ाई भले ही और किसी के लिये कष्ट का कारण बन गई हो, पर सेठजी के लिये तो कामधेनु ही साबित हुई थी। पहले दिल्ली के वे एक मामूली सेठ थे। अधिक से अधिक बीस हजार के मालिक थे। कपड़े की एक दुकान थी, पर थी वह बड़े मार्के की जगह पर, फतहपुरी और घंटा घर के बीच में यह दूकान थी।

लड़ाई के पहले कुछ दिन तो कुछ विशेष फायदा नहीं हुआ; पर जब कन्ट्रोल चला, तो सेठजी ने सप्लाई विभाग के अपने एक रिश्तेदार की सलाह से यह दिखला दिया, कि वे कई दुकानों के मालिक हैं, जिन में कई तरह की चीजें बिकती हैं। फिर क्या था, उन्हें लायसेंस मिल गये। जहां जरा दिक्कत हुई, उन्होंने चांदी की मार से काम लिया। बस, फौरन मुश्किलें आसान होती गई।

फिर क्या था, मालामाल हो गये। पहले लखपती हुए, फिर करोड़-पती। उसी रिश्तेदार की सलाह से मिलिटरी के ठेके लिये। मेरठ, दिल्ली और अन्य कई जगहों के ठेके उन्हीं को मिले।

खूब गुलछर्रे उड़ाते रहे। जब हिटलर हारा, तब उनके कान खड़े हुए। पहले तो बोले—"अजी, यह कभी हो सकता है? देख लेना, हिटलर फिर उठेगा।" पर जब पता लगा, कि हिटलर हार गया, तो जापान पर आशा लगाये रहे। बोले—"देख लेना, हिटलर जितने साल लड़ा, जापान उतने ही साल लड़ेगा!—"

पर यह आशा भी हिरोशिमा की घटना के बाद खतम हो गई।

इसी लिये सेठजी अफसोस में हुक्का पी रहे थे। लड़ाई की समाप्ति से सारी दुनिया खुश थी, पर सेठजी को बहुत सदमा पहुंचा था। उन्होंने तो कुछ और ही सोचा था। उनका हृदय कराह रहा था।

अब तक वे कहा करते थे, कि जपान सात साल लड़ेगा, पर एका-एक उनकी राय बदल गई, जैसे किसी मित्र से आशा पूरी न हो, तो उसके सम्बन्ध में अपने विचार बदल जाते हैं।

सेठ रामनाथ हुक्का पीते ही गये। नौकर कई बार चीलम बदल चुका था। जब इस बार नौकर आया, तो उन्होंने मानो एकाएक किसी फैसले पर पहुंच कर, मुंह से फर्शी की नली हटाते हूए, कहा—"बड़े मुनीमजी को बुलाओ।"

बूढ़े मुनीमजी दो मिनट में आकर, सामने खड़े हो गये। सेठजी ने उनसे बैठने के लिये कहा। वे सेठजी के सामने बैठ गये। फिर फर्शी की नली हाथ में लेते हुए, सेठजी बोले—"मुनीमजी, अब तो सब परड़ा हो गया! क्या क्या सोचा था..."

मुनीमजी तो हां में हां मिलाने में अभ्यस्त थे ही। बोले—"हां; पर अभी तो खबर पक्की नहीं हुई।"

सेठजी भरे बैठे तो थे ही, एकाएक तैश खा कर बोले—"अजी, जापान साला क्या खाक लड़ेगा ? भात खानेवाला—"

मुनीमजी को बड़ा आश्चर्य हुआ, कि सबेरे तक कुछ और कह रहे थे, अब यह क्या हो गया। पर वे भी बड़े घुटे हुए थे। फ़ौरन बोले—"सेठजी, मैंने तो पहले ही कहा था—"

सेठजी बोले—"तुम क्या कहोगे ? मैं तो सब कुछ जानता था, पर जान कर भी अनजान बनता था, सोचता था, कि अपने एशिया का ही देश है, इस लिये हम सब को उसकी भलाई की बात ही सोचनी चाहिये। अपने को क्या है? "कोऊ नृप होय हम का हानि, चेरी छोड़ न होऊ रानी।" यहां तो हमेशा एड़ी चोटी का पसीना एक करते थे, तब कहीं रोटी मिलती थी। सो अब भी मिलेगी ही।" कह कर, उन्होंने नली का आलिंगन करते हुए, उसे मुँह में रक्खा, और पैर पसार दिया।

बूढ़े मुनीमजी कुछ समझ नहीं पाये, कि क्या कहना चाहिये। इस कारण बोले—"सो तो है ही।"

सेठजी ने मुनीमजी को इसलिये थोड़े बुलाया था, कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर बात करें। इस कारण इस प्रसंग को यहीं समाप्त करते हुए, बोले—"मुनीमजी, अब मेरा क्या होगा ?" उनके चेहरे पर एक शून्यता आ गई। जैसे उनका सर्वस्व लुट गया हो।

मुनीमजी समझ गये, कि किस बात की तरफ इशारा है। बोले—"ईश्वर ने चाहा, तो आपका एक बाल भी बांका न होगा। 'जाको राखै साइयां, मारि सकै कोय।'—"

सेठजी को सहारा मिला। बीच में ही टोक कर, बड़े जोर से ठहाका मार कर हंसते हुए बोले—"क्या, क्या ? साफ साफ कहो।" कह कर उन्होंने पैर और पसार दिया। एक पैर करीब बूढे मुनीमजी को छू गया।

पर मुनीमजी के माथे पर एक शिकन भी नहीं आई। बोले—"आप ही के यहां बाल सफेद हुए हैं, सो मैंने भी कुछ सीखा है।"

सेठजी की बाछें खिल गई फूल कर कुप्पा होकर, बोले—"बाप दादों की विद्या है। कहां तक न सीखता मैं। लोग कहते हैं चोरबाजारी, पर यहां तो कभी उसके पास नहीं फटके। बस ईमानदारी की कमाई खाता हूं। न ऊधो के लेने में, न माधो के देने में।"

मुनीमजी बोले—"बस यही मेरा भी कहना है। कम मुनाफा और ज्यादा बिक्री।"

मुनीमजी और न मालूम क्या क्या कहते पर सेठजी बीच ही में टोक कर, बोले—"तो फिर सुनाओ न। क्या सोचा है? मैं भी तो कुछ समझूं।"

मुनीमजी बोले—"लड़ाई भले हीं बन्द हो, कन्ट्रोल तो रहेगा ही इस लिये उधर कोई खतरा नहीं। रहे मिलटिरी के ठेके। सो उस ओर जरा राजनीति से काम लेना पड़ेगा।"

सेठजी हँस कर, बोले—"ठीक कहा, राजनीति से काम लेना पड़ेगा। हा हा हा! राजनीति!"

"राजनीति यह कि सरकार कहेगी कि ठेका खतम। और हम कहेंगे कि 'हां' खतम। पर हम तो रूपये लगा चुके, सब काम कर चुके। हमें पैसा मिले। जहां अनाज, घी वगैरा सप्लाई करने का ठेका है वहां हम कह देंगे कि हम तो सब खरीद चुके, सरकार को लेना पड़ेगा, या फिर आधा दाम देकर क्षति पूर्ति करें। जहां सड़क, बिल्डिंग या पुल के ठेके हैं, वहां हम कह देंगे, कि सब तैयार है। पूरा दाम मिले।"

"पर जांच हुई, तो?"

अब की बार मुनीमजी ठठाकर हंसे। बोले—"सेठजी, जांच तो आदमी ही करेंगे न। आपकी कृपा से सैकडों जांच देख चुका हूं। सब

जांच ठीक हो जायगी। पैसे तो पहले भी लगते थे, अब कुछ ज्यादा लग जायंगे।"

इसी प्रकार कुछ समय और उस विषय की चर्चा चलती रही। फिर ठेकों के ब्योरों पर, और किसको मिलना तथा किसे फोड़ना चाहिये, इस विषय पर बातचीत चलने लगी। बातें करते करते रात के दस बज गये।

अगले ही दिन से तय किये हुए ढंग से काम होने लगा। कहां कोई दिक्कत नहीं हुई। मिलिटरी के ठेकों के घट जाने से सेठजी की आमदनी घट गई, पर अब उनके पास खासी रकम थी। कई नये कारोबार खोल दिये। लड़ाई बन्द होने का सेठजी को बड़ा सदमा था; पर जवान बेटा मर जाता है, तो उसे भी लोग सह ही लेते हैं। सेठजी छाती पर पत्थर रख कर, उसे सह गये। जो क्षति हुई उसकी पूर्ति तो असम्भव थी; पर जितनी भी पूर्ति हो सकती थी, उसमें वे नहीं चूके। चतुर मल्लाह की तरह वे हवा को देखते रहे, और उसी के मुताबिक पाल को ठीक करते रहे।

इतने में एकाएक कांग्रेस और सरकार के बीच समझौते की बातचीत शुरू हुई। कई बार बातचीत खतम हुई, तो खुश हुए। पर फिर शुरू हुई। ऐसा मालूम होता था, कि कुछ होकर रहेगा। सेठ रामनाथ बहुत घबराये, क्यों कि पंडित जवाहरलाल ने अब की बार छूटते ही कहा था, चोरबाजारियों को फांसी दे देनी चाहिये। यद्यपि सेठ रामनाथ अपनी समझ में चोरबाजारी नहीं थे, पर वे डरते थे, कि कहीं गेहूं के साथ घुन भी न पिस जाय। फिर इन कांग्रेसियों का क्या ठिकाना? ये लोग जब देखो, तब किसान मजदूर राज्य की बात करते थे। यह बात उन्हें बहुत बुरी लगती थी, बहुत ही बुरी। वे डरते थे, कि पसीने की गाढ़ी कमाई से कहीं हाथ न धोना पड़े।

इतनी ही बात नहीं, उन्हें भीतर यह भय भी था, कि उन्होंने वार फण्ड में जो कुछ मिला कर दो लाख के करीब रुपये दिये थे, कहीं इसके लिये उन पर बाद में आफत न आये। इस कारण वे स्वराज्य के विरुद्ध

थे। वे डरते थे, कि वार फण्ड में चन्दा देने के लिये जेल जाने की नौबत न आ जाय।

पर उनके विरोध करने पर भी, स्वराज्य रुका नहीं। वह तो आया ही। सेठजी थे वस्तुवादी, उन्होंने बिलकुल ही ठाट बाट बदल दिया। मकान पर तिरंगा लगवाया, दूकानों पर तिरंगा लगवाये, मोटर पर तिरंगा लगवाया। खद्दर और गांधी टोपी पहनने लगे। अकसर गांधीजी की प्रार्थना सभा में भी जाकर आंख मूंद बैठ जाते थे।

सेठजी के इस परिवर्तन से किसी को आश्चर्य नहीं हुआ; क्योंकि सभी ऐसा कर रहे थे। कांग्रेस विरोधियों में कांग्रेसी बनने के लिये होड सी लगी हुई थी। जल्दी घर की दीवारों पर से सम्राटों और वायसरायों की तस्वीरें हटा कर महात्माजी, पं० नेहरू, सरदार पटेल आदि की तस्वीरें लगाई जा रही थी। यदि सेठजी ने इन्हीं बातों को किया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या था? फिर नेताओं और देशवासियों के सामने इतने प्रश्न और समस्यायें थीं, कि ऐसे केंचुल बदलने वालों की तरफ लोगों का ध्यान न जा सका। कहीं दंगे हो रहे थे, कहीं शरणार्थी समस्या थी, और कहीं कुछ और।

यद्यपि सेठजी दिल्ली में रहते थे, पर उनका आदि निवास स्थान संयुक्त प्रान्त के किसी जिले में था। छोटा सा जिला था अब उन्हें जन्मभूमि की याद आई। सेठजी वहीं पहुंच कर वहां के कांग्रेसियों से मिले। पता चला, कि वहां की कांग्रेस में तीन पार्टियां हैं। ये पार्टियां किसी सिद्धान्त के आधार पर नहीं, शक्ति प्राप्ति के लिये बनी थीं, यद्यपि तीनों पार्टियां अपने को गांधीवादी बताती थीं। पर एक दूसरे के विरुद्ध गन्दे से गन्दा और झूठा प्रचार करती थीं। सब पार्टियों को रुपयों की कमी थी। सब स्थानीय नेता सेठजी से मिलने लगे। सेठजी सब को कभी सौ, कभी पचास दे देते थे, पर किसी की पार्टी में शामिल नहीं हुए थे। वे तो देख रहे थे, कि ऊंट किस करवट बैठता है।

अब वे कभी दिल्ली रहते, कभी अपने जिले में। इधर जन्मभूमि में भी उन्होंने परमिट वगैरा पाकर कई कारोबार जारी कर दिये। दो चार कांग्रेसियों को उन्होंने नौकर रख लिया। इनमें एक व्यक्ति जगन्नाथसिंह भी था, जिसने १९४२–४३ के दिनों में इधर के जिलों में सरकार का नातका बन्द कर रक्खा था। नौजवानों में इसका बड़ा प्रभाव था। सेठजी जगन्नाथसिंह को दिल्ली ले गये, और वहां उसकी बड़ी खातिर की। सब स्थानीय नेता बुलाये गये। उपर से स्वागत सत्कार होता रहा, और भीतर मुनीमजी सब निमन्त्रितों से यह कहते रहे, कि सेठजी ने ही १९४२-४३ में जगन्नाथसिंह को रुपये देकर, उधर का सारा आन्दोलन चलाया था। जगन्नाथसिंह के नाम से दिल्ली के कांग्रेसी परिचित थे। नेहरूजी छुटने के बाद जब उस जिले में गये थे, तो उन्होंने जगन्नाथसिंह की बड़ी प्रशंसा की थी। जगन्नाथसिंह को क्या पता था, कि उसके श्रेय में सेठ रामनाथ अग्रवाल हिस्सा बांट करायेंगे।

दावत बड़ी सफल रही। दिल्ली के एक छोटे नेता ने जगन्नाथसिंह से पूछा— "आपका और सेठजी का तो बहुत पुराना सम्बन्ध है?"

जगन्नाथसिंह कुछ कहने जा रहे थे, परमु नीमजी बीच ही में बोल उठे— "हां हां, बहुत पुराना। सेठजी तो अपने जिले में सब तरह के देश हितकारी कार्यों में भाग लेते हैं। यहां तो वे केवल व्यापारी हैं।"

सब लोग सेठजी की तारीफ़ करने लगे।

मुनीमजी बोले— "सेठजी ने दो लाख रुपये ब्रिटिश सरकार को वार फण्ड में दिये, पर पांच लाख कांग्रेस को दिये। हा हा हा।"

मुनीमजी ने इतना बड़ा झूठ कहा, कि स्वयं सेठजी भी झेंप गये। पर वे भी हंसे—हा हा हा। राजनीति जो ठहरी।

उस दिन से सेठ रामनाथ दिल्ली में एक महान देशभक्त मान लिये गये। न किसी ने उनकी 'चोर बाजारी' का हाल पूछा न मिलिटरी ठेके का। अपनी सफलता पर वे खुश थे। अपने जिले में तो खैर वे एक शक्ति

हो ही गये थे, दिल्ली में भी वे कुछ समझे जाने लगे।

इतने में महात्माजी की हत्या हो गई। फिर तो सेठजी को खूब मौका मिला। एक महीने तक तो वे सिवा मुनीमजी के न किसी से मिलते थे, न बात करते थे। हां, गांधीजी की अर्थी के साथ वे अन्त तक रहे। विह्वल दशा में उनके कई एक फोटो भी अर्थी के साथ निकले। जब गांधी स्मारक फण्ड खुला, तो उन्होंने उसमें भी कई बार एक लाख रुपया दिया। अब तो उनकी बड़ी आवभगत होने लगी। कांग्रेस के सारे जलूसों के अतिरिक्त वे अब यदा कदा गवर्नमेंट हाउस में भी बुलाये जाने लगे अब उन्होंने मुनीमजी से सारे काम चलते न देख कर, एक कांग्रेस एम्. ए. को डेढ़ सौ रुपये मासिक पर सेक्रेटरी रख लिया था। मुनीमजी अब भी असली सलाहकार थे, पर गिटपिट के लिये ये नये साहब थे, क्योंकि यद्यपि स्वराज्य हो चुका था, फिर भी गिटपिट के बगैर कहीं काम नहीं चलता था। हिन्दी भाषियों के लिये राष्ट्रभाषा की दुहाई देना फैशन था, सो सेठजी भी देते थे; पर उनको यह तजुर्बा हो चुका था कि बगैर अंग्रेजी के राजनीति, यानी मुनीमजी और वे जिसे राजनीति कहते थे, वह असम्भव थी।

सेठजी के दिन अच्छे कट रहे थे। इतने में एक घटना हो गई, जिससे सेठजी अशान्त हो उठे। सप्लाई विभाग का वही रिश्तेदार, जिसकी सलाह से सेठजी एक मामूली सेठ से करोड़पति हो गये थे, एकाएक किसी मामले में फंस कर मुअत्तल हो गये थे। वे सेठजी के पास आये, और बोले कि सेठजी उनकी मदद करें। सेठजी ने पूछताछ करके समझ लिया, कि मामला बड़ा टेढ़ा है। बोले—"मैं क्या कर सकता हूं? मैं कोई मन्त्री थोड़े ही हूं?"

"अरे, सेठजी आप चाहें, तो सब कुछ कर सकते हैं। जरा आप कह तो दीजिये। आपकी बात टालेगा कौन? ऊपर से नीचे तक सभी आपको मानते हैं।" उस व्यक्ति ने गिड़गिड़ा कर कहा।

सेठजी खुश हुए, पर रुखाई से बोले—" मानते इसी लिये है, कि मैं अपने प्रभाव का गलत इस्तेमाल नहीं करता।"

"मुझे जेल हो जायगा।" उस व्यक्ति ने आर्त स्वर में कहा।

सेठजी बोले—"जेल तो बड़े से बड़े गये। इसमें रखा क्या? मुझे तो अफ़सोस है, कि मैं जेल नहीं जा पाया। ऐसे माया मोह में फंस गया था, कि देर में आंख खुली।"

वह व्यक्ति बहुत गिड़गिड़ाया, तो सेठजी इतने के लिये तैयार हुए, कि यदि ऊपर वाले उनसे पूछेंगे, तो वे कुछ कह देंगे। क्या करता, वह इसी बात को बहुत समझ कर चला गया। उसे वे दिन याद आ रहे थे, जब सेठजी उसके पास आकर खुशामद करते थे।

इसके दो तीन दिन बाद की बात है। सेठजी एक पार्टी में गये हुए थे। इसमें उच्च सरकारी अफ़सर तथा अन्य गन्य मान्य लोग थे। दावत अंग्रेजी ढंग पर थी। सेठजी अब इन दावतों में खूब मजे में भाग लेते थे। सिर से पैर तक वे खद्दर पहने हुए थे।

जब दावत खतम हो गई, तो सप्लाई के एक उच्च अफसर उनके पास आये। बोले—"सेठजी, त्रिभुवनाथ अग्रवाल आपके कोई लगते हैं?"

सेठजी समझ तो गये, कि किस का जिक्र है, पर बोले—"कौन त्रिभुवननाथ?"

"जो हमारे दफ़तर में हैं।"

"ओह, अच्छा। हां, सभी अग्रवाल एक दूसरे के कुछ न कुछ लगते हैं।"

वह अफसर कुछ ठिठका। बोला—"आपको मालूम है कि उन पर घूसखोरी का एक मामला है?"

सेठजी कुछ उदासीनता से बोले—"तो मैं क्या करूं? जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। हा हा हा हा!"

"तो आप कुछ नहीं कहना चाहते ?" वह अफसर बोला ।

"नहीं । मैं क्या कहूं ?"

अफसर खुद त्रिभुवननाथ को बरी करना चाहता था। उस मामले में कोई अच्छा सबूत नहीं था। सबूत अदालत के लायक तो था नहीं, हां, विभागीय जांच में मामला कुछ ठहरता। पर विशेष कुछ हो नहीं सकता था । अधिक से अधिक तरक्की रुकती । इन्हीं बातों को सोच कर, अफसर बोला—"तो आपको इस मामले में कोई दिलचस्पी नहीं है ? मैं समझता था, बल्कि मुझे विश्वास दिलाया गया था, कि आपको दिलचस्पी है । इसलिये मैंने पूछ लेना उचित समझा ।"

सेठजी ने दांत खोलकर, बन्द कर लिये । फिर भी बड़ी दृढता से बोले—"मेरी तो दिलचस्पी यह है, कि न्याय अपना काम पूरा करे ! हा हा हा !"

अफसर बहुत प्रभावित हुआ । वहां कई व्यक्ति सुन रहे थे । यह बात चारों तरफ फैल गई, कि सेठजी की एक बात से उनका एक रिश्तेदार घूसखोरी के मामले में बच सकता था, पर उन्होंने कोई बात नहीं कही । लोग सेठजी की जयजयकार करने लगे । यहां तक कि सरकार तक उनकी ख्याति पहुंची । एक कमेटी बनने जा रही थी, जो सब विभागों की जांच पड़ताल करने को थीं । इसमें सेठजी रख लिये गये ।

पर सेठजी इतने से खुश नहीं हुए । वे चाहते थे, कि पार्लियामेंट के मेम्बर हो जाय । सलाहकारों ने कहा, कि इसके लिये दिल्ली में दाल नहीं गलेगी, वे अपने जिले में ही कोशिश करें । यद्यपि चुनाव अभी नहीं होने वाला है, पर सलाहकारों ने कहा, कि कोशिश अभी से करनी चाहये ।

फिर क्या था, कोशिश होने लगी । जिला कांग्रेस कमेटी में उन्होंने जगन्नाथसिंह को सभापति बनवाया । फिर एक अच्छे साहित्यिक से लिखवा कर, जगन्नाथ सिंह के नाम से अपनी सौ पृष्ठों की एक जीवनी

निकलवाई, और उसे गांव गांव में बटवा दिया। बेचारे जगन्नाथसिंह को पता भी नहीं था, कि इस पुस्तक में क्या लिखा है। जब पुस्तक छप कर आई, तब उसे पता लगा। संक्षेप में इस पुस्तक में जगन्नाथसिंह की तरफ से यह कहा गया था, कि सेठजी न केवल इधर के इलाके के सारे आन्दोलन को पैसा देकर चलाते रहे, बल्कि उन्हीं की राय से तोड़ फोड़ का प्रत्येक काम हुआ। जब जगन्नाथसिंह ने उस पुस्तक को पढा, तब सामने मुनीमजी बैठे थे। वह एकाएक बोल उठा—"इसमें का तो सारा किस्सा ही झूठा है!"

मुनीमजी इसी प्रतिक्रिया को देखने के लिये बैठे थे। आंखें तरेर कर, बोले—"क्या झूठ है?"

जगन्नाथसिंह को सहसा स्मरण हो आया, कि वह सेठजी का नौकर है। ठंडा होकर बोला—"सत्य का अपलाप है।"

मुनीमजी पहले से अधिक गरम होकर बोले—"कुछ कहोगे भी साफ साफ, कि सिर्फ बकवास ही करोगे? अगर सेठजी के बारे में कुछ कह रहे हो, तो साफ साफ कहो। फिर देख लूंगा। उन्होंने तुम्हें इतना पाला पोसा और अब तुम उन्हीं पर वार कर रहे हो? चलो, आज ही मैं तुम्हारा हिसाब किये देता हूं! फिर देख लूंगा मैं, कि कैसे तुम जिला कांग्रेस कमेटी में रहते हो!"

जगन्नाथ की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। इस बीच में वह प्रांत के किसी सरकारी विभाग में नौकरी पाने की चेष्टा कर चुका था, पर "तुम्हारी उम्र अधिक है। तुम बी० ए० भी नहीं हो" कह कर उसे लिया नहीं गया था। उसने बहुतेरा कहा, कि "मैं बी० ए० फाइनल में था। अगस्त क्रांति में न पड़ता तो बी० ए० हो जाता" पर किसी ने नहीं सुना। वह रुआंसा होकर, मुनीमजी से बोला—"नहीं नहीं, मैंने सेठजी के बारे में कुछ नहीं कहा। वे तो मेरे पूज्य हैं। मैं तो कह रहा था, कि इसकी भाषा ठीक नहीं है।"

बस मुनीमजी ने कहा—"ठीक अब है। अगले संस्करण में भाषा ठीक करना। अब तुम्हारी किताब छप गई। जाकर एक कापी सेठजी को दे आओ।"

जगन्नाथ हक्का बक्का होकर उठा। पर मुनीमजी बोले—"अरे पगले, ऐसे कहीं किताब दी जाती है?" फिर पुस्तक की 'फ्लाइ लीफ' खोल कर बोले—"लिखो, मेरे जीवन के ध्रुव तारा, हमेशा से मेरे पूज्य श्री सेठ रामनाथजी अग्रवाल के कर कमलों में।"

जगन्नाथ सिंह ने वैसा ही किया। तब मुनीमजी खुश खुश उस पुस्तक को लेकर, सेठजी के पास पहुंचे। बोले—"लीजिये, इसे सहेज कर तिजोरी में रखिये। कहीं साला बाद को 'यह न कहे, कि यह किताब मैंने नहीं लिखी थी।' यह किताब रहेगी तो उलटे उसे जेल भेजवा देंगे। राजनीति में हमेशा दुश्मन से होशियार रहना चाहिये।"

"दुश्मन कौन?" सेठजी ने पूछा।

मुनीमजी बोले—"राजनीति में दोस्त के दुश्मन होते कितनी देर लगती है?" सेठजी बोले—"सो तुमने ठीक कहा।"

सेठजी का शुमार अब १९४२ के वीरों में भी हो चुका है। सब तैयारी पूरी है। पार्लियामेंट के अगले चुनाव में सेठजी को कांग्रेस का टिकट मिलेगा, इसकी पूर्ण आशा है। इस कारण सेठजी रोज अखबारों को देखा करते हैं, कि अगला चुनाव किस समय होगा, इस सम्बन्ध में कोई खबर है कि नहीं। पर इससे भी अधिक दिलचस्पी से वे तृतीय महायुद्ध छिड़ने की पेशबंदियों तथा अनुमानों को पढ़ा करते हैं, क्योंकि वे समझते हैं, कि अब की बार वे अरबपति हो जायेंगे। वे चाहते हैं, कि युद्ध जल्दी से जल्दी छिड़े। इसी कारण उनका कहना है, कि यदि रूस को दबाना है, तो फौरन लड़ाई छेड़ी जाय, नहीं तो रूस इतना तगड़ा पड़ जायगा, कि उससे लड़ना बेकार होगा। कौन जाने, कब उनकी आशायें पूर्ण होंगी या होंगी भी नहीं? पर मुनीमजी कहते हैं—हंसी थोडे ही है। राजनीति राजनीति है! लड़ाई तो छिड़ेगी, और फिर छिड़ेगी!"

सोख्ते का टुकड़ा

रेखा की उम्र तीस से अधिक हो चुकी थी। दो बच्चों की मां थी। अपनी जान में सुखी थी। पति काफी पैदा करते थे। गहने थे। निजी मकान था। जवानी थी अपनी तथा पति की। बच्चे स्वस्थ थे। बड़ा बच्चा, विन्ध्या, स्कूल जाता था। छोटा बच्चा, हिमू, अभी घर ही में पढ़ता था। रेखा की तरह उच्चाकांक्षा से शून्य साधारण स्त्री के सुखी रहने के लिये और किस बात की जरूरत थी?

तो वह बहुत सुखी थी। पर उसका यह सारा सुख एक दिन एक मुहूर्त के अन्दर काफूर हो गया। उसके पैर के नीचे से जमीन खिसक गई। सारा जगत उसके सामने अन्धकार पूर्ण हो गया।

घर में नौकर भी थे, और एक नौकरानी भी थी। पर वह अपने पति की बैठक को खुद ही भाड़ती थी, विशेष कर उनकी किताबों से लदी, लिखने की मेज को। एक बार उसके पति का कोई जरूरी कागज मेज पर से उड़ गया। इसपर वे बहुत नाराज हुए थे। पतिने नौकरों से कह दिया था, कि वे उनके कमरे में न घुसा करें। तब से रेखा स्वयं इस कमरे को

साफ करती या करवाती थी। यदि कभी नौकर झाड़ू लगाते, तो भी मालकिन साथ में रहती। जो कूड़ा घर से निकाला जाता, उसकी बाका-यदा जांच की जाती, और तब वह फेंका जाता।

कागज खोनेवाली उस घटना को हुए कई साल हो गये थे, पर रेखा ने उस नियम को ढीला नहीं होने दिया था। और रामविलास बाबू को फिर कभी शिकायत का मौका नहीं मिला था।

ऐसे ही एक दिन जब वह रामविलास बाबू की मेज साफ़ कर रही थी, तो एक सोख्ते की तरफ़ उसका ध्यान गया। उस सोख्ते पर साफ साफ लिखा था, 'प्यारी नीला'। हां ये ही शब्द थे, और बिलकुल साफ और ये शब्द उसके पति की ही लिखावट में थे। उसने सोख्ते को हाथ में उठाकर बड़े ध्यान से देखा। उसे सन्देह नहीं रहा, कि लिखावट उसके पति की ही है।

नीला! यह नीला कौन है? वह नीला नाम की किसी स्त्री को नहीं जानती थी। नहीं, इस नाम की किसी स्त्री को उसने कभी देखा भी नहीं था। 'नीला' और 'प्यारी'! रेखा के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। तो यह बात है। इस हरामजादी नीला पर इन दिनों आप मर रहे हैं। तभी अनमने रहते हैं, और रात में देर से आते हैं। और पूछने पर बताते हैं, कि इन दिनों काम बढ़ गया है।

'अच्छा' तो यह काम रहता है! बुढ़ापे में अब मस्ती सूझी है। दो बच्चों की मां से अब जी नहीं बहलता, इस कारण अब नीला खोज निकाली गई है। एक दफा देख तो लूं, कि यह नीला कैसी है, तो झाड़ू से उसकी तबीयत फक कर दूं। नौकरों से इतने जूते लगवाऊं, कि सब नखरे निकल जायं'। सोचते सोचते रेखा की आंखें लाल हो गई। पर वहां नीला कहां थी? वहां तो केवल सोख्ता था। उसकी मुट्ठी के अन्दर सोख्ता टेढा पड़ गया, और फटने को हो गया।

उसने सोख़्ते को निकाल कर फिर देखा। हां, इसमें कोई सन्देह नहीं, कि 'प्यारी नीला' लिखा हुआ था। उसने उस सोख़्ते को अपने ब्लाऊज के अन्दर रख लिया, मानो वह कोई अमूल्य निधि हो। फिर उसने नौकर से कहा, "जाओ" और वह दरवाजा बन्द करके सारे कमरे की तलाशी लेने लगी। पहले तो उसने देखा कि कहीं और सोख़्ता है, कि नहीं। सारा कमरा खोजने पर सोख्ने जो दो चार टुकडे मिले, उनमे वह जिस बात की खोज कर रही थी, उस पर कोई रोशनी नहीं पडी। ये टुकड़े बिलकुल सादे थे। उनपर कहीं कुछ छपा नहीं था।

रेखा ने सोचा, 'हाय ! पहले मुझे क्यों नहीं मालूम हुआ ? इसके पहले कूड़े में कई सोखते गये होंगे। मैं चूक गई।' इस बातके सूझने ही, वह झपट कर कमरे के बाहर निकली, और जिस 'डस्टबिन' में घर का कूड़ा फेंका जाता था, उसके पास पहुंची। वहां कूड़ा था, पर बहुत थोड़ा। एक छडी लाकर उसे कुरेदा, तो उसके अन्दर कोई कागज नहीं मिला।

मालकिन को इस प्रकार व्यस्त होकर कूड़ा कुरेदते देख कर, दो नौकर तथा नौकरानी आकर एकत्र हो गये। और सब रुंआसे चेहरे बना कर पूछने लगे—"माईजी, क्या खो गया ?"

रेखा ने कुछ उत्तर नहीं दिया, और छड़ी से कूड़े को कुरेदती रही। फिर जब नौकरों ने वही प्रश्न किया, तो उसका उत्तर न देती हुई बोली—"इतना कम कूड़ा क्यों है ?"

नौकरानी वयोवृद्ध थी, और रामबिलास बाबू के पिता के जमाने की थी। और सब लोग तो रेखा को 'माईजी' कहते थे, पर वह 'बहूजी' कहती थी। बोली—'बहूजी, आज ही का तो कूड़ा है। आपका ही तो हुक्म है, कि रोज़ का रोज़ फेंक दिया करो।'

नौकरानी और भी कुछ कहने जा रही थी, पर रेखा ने कहा—'हां, मेरे सब हुक्म पूरे कर देती हो न ! इसी से तो सब कुछ हो रहा है !'

कह कर, रेखा फिर पति की बैठक में घुस गई, और दरवाज़ा बन्द कर लिया।

नौकर मालकिन के इस रुख से घबरा गये। रामखेलावन ने अभी अपनी चिलम भरी थी, और पीने ही जा रहा था, कि इस प्रकार मालकिन उधर आ निकली। उसने जाकर जल्दी से चिलम उलट दी, और उसे छिपा कर रख दिया। मालकिन जब प्रसन्न रहती थी, तो किसी नौकर को चिलम पीते देख कर मुँह फेर कर चल देती थी, पर नाराज़ी के समय अवश्य बिगड़ती थी। दूसरा नौकर हरखू जाकर बरामदे में शोर करता झाड़ू लगाने लगा। अभी ही वह उस स्थान पर झाड़ू लगा गया था। पांड़े रसोईघर में मसाला पीस चुका था, पर फिर से उसे पीसने लगा।

केवल नौकरानी जहां की तहां खड़ी रही। यदि मालूम हो जाता, कि क्या चीज़ खो गई है, तो खोज की जाती; पर मालकिन ने तो कुछ बताया ही नहीं। उसने अपनी बुद्धि से अटकल लगाया, कि हो न हो कोई चाभी खो गई होगी, क्यों कि मालकिन को चाभियां खो डालने की आदत थी। तब उसने उस कूड़े को फिर कुरेदा। पर उसमें कुछ होता, तब तो मिलता? फिर भी नौकरानी निराश नहीं हुई, और इधर उधर खोजने लगी। संयोग से एक चाभी मिल गई।

वह उसे लेकर फुदकती हुई मालकिन के पास पहुंची, और दरवाजे पर थपकी लगाकर, बोली—"बहूजी, बहूजी!—चाभी मिल गई।"

उसके कई बार दरवाजे पर थपकी लगा चुकने के बाद कहीं मालकिन ने दरवाजा खोला। बोली—"क्या है?"

"बहूजी, चाभी मिल गई। लो," कहकर, उसने हाथ बढ़ा कर चाभी देना चाहा।

चाभी देख कर, मालकिन का तेवर चढ़ गया। वह कुछ कटु शब्द कहने ही जा रही थी, पर एकाएक किसी बात के याद आ जाने से वह चुप रह गई। इशारे से नौकरानी को कमरे के अन्दर बुला कर, फिर

दरवाजा बन्द करके बोली—"अच्छा, जगन की मां, बतलाओ, नीला कौन है ?"

जगन की मां अचम्भे में पड़ गई। कुछ देर सोचकर, बोली—"नीला कौन, बहूजी? मुझे तो मालूम नहीं। क्यों, नीला को क्या हुआ?"

रेखा समझती थी कि वह न जानती होगी, फिर भी वह निराश हुई। उसने देखा, कि जगन की मां का चेहरा कौतूहल से तमतमा रहा है। शायद उसे कुछ सन्देह हो गया है। तब रेखाने चट कहा—"इस नाम की मेरी कोई ननद थी, जो शायद बचपन में ही मर गई थी।"

"नहीं तो, बहूजी। मां जी के ज्यादा बाल बच्चे हुए ही नहीं। दो बेटे हुए थे, रामबिलास, और हरबिलास, और एक बेटी इन्दिरा। कोई बच्चा मरा नहीं। हां, एक दफा मैं घर चली गई तब हमल गिर गया था।"

"अच्छा, अपनी ननद न सही, कोई मौसेरी चचेरी, ननद थी ?" रेखाने पूछा।

"नहीं। अच्छा ठहरो, बहूजी। क्या कहा, नीला?" फिर कुछ रुककर बोली—"परमिला नाम की एक मौसेरी बहन थी।"

रेखा बोली—"परमिला नहीं, प्रमीला। अच्छा, तुम जाओ। मैंने योंही पूछा था। किसी से कुछ कहना नहीं।"

मालकिन का इशारा पाकर जगन की मां बाहर चली गई और जाते समय दरवाजा भेड़ती गई। चली तो वह गई, पर उसे मालकिन से कहीं अधिक अफसोस हुआ। वह करीब करीब रुआंसी मुद्रा बनाकर, रसोई घर के पास पहुंची, और वहां पर लद से बैठ गई मानो उस पर कोई बड़ी भारी आफत आ गई हो।

रामखेलावन और हरखू मानो उसी की राह देख रहे थे। वे झट आकर, उसे घेर कर खड़े हो गये। उधर से पांडे, जो मसाले को चंदन से

बारीक बना चुका था, करछुल हाथ में लेकर, रसोई घर से झांकने लगा। सब को रुआंसी सूरत बनाये खड़े देखकर, उसने अपनी मुद्रा भी रूआंसी बना ली। पर वह अपने कानों पर जोर लगाये रहा, कि जगन की मां की एक भी बात कहीं सुनने से रह न जाय।

सारे घर में सन्नाटा था। लड़के स्कूल गये हुए थे, और बाबू दफ्तर।

जगन की मां ने देखा, कि वह इस समय सब के आकर्षण का केन्द्र हो रही है। उसकी आत्मश्लाघा को गुदगुदी लगी। पर उसने चुप्पी जारी रक्खी, और अपने चेहरे को पहले से अधिक रुआंसा बना लिया।

रामखेलावन ने हरखू को आंख मारी। पर हरखू ने उस आंख मारने का कोई उत्तर नहीं दिया। तब रामखेलावन ने एक बार पांडे की तरफ देखा; पर पांडे ने ऐसा रुख दिखाया, मानो वह सचमुच पांडे नहीं, बल्कि पांडे की लोह मूर्ति हो। उसने पलक तक नहीं हिलाई।

तब रामखेलावन ने हिम्मत करके, खुद ही पूछा—"क्या बात है, जगन की मां?"

पर जगन की मां को मालकिन ने मना कर दिया था, और यह अभी दो मिनट पहले की बात थी। उसने चुप्पी जारी रक्खी। रामखेलावन ने जब देखा, कि कोई उत्तर नहीं मिला, तो उसने दूसरा प्रश्न धमक दिया। अब तो उसका मुंह खुल ही गया था। चाभी खोई थी न?

जगन की मां कुछ कहना नहीं चाहती थी। उसने तो तय कर लिया था, कि उसे कुछ नहीं कहना है, पर उसे यह बहुत बुरा मालूम हुआ, कि ये लोग अभी तक चाभी के दायरे में ही सोच रहे हैं, जब कि असली मामला, बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उसे यह निश्चय था, कि मामला बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वह चाहती थी, कि यह मामला महत्त्वपूर्ण हो, क्योंकि

इसी में उसका भी महत्व था। वह बोली—"चाभी का मामला नहीं है। तुम लोग अपना काम करो।"

रामखेलावन ने एक बार उस कमरे की तरफ देखा, जिसमें इस समय मालकिन थी। फिर उसने पूछा—"जगन की मां, बताओ न, क्या बात है? मैं भी तो आठ बरस से यहां का नमक खा रहा हूं।" उसके स्वर में प्रार्थना थी।

जगन की मां ने कुछ सोचा। रामखेलावन बाबू का प्यारा नौकर था। उसे नाराज करना ठीक नहीं। फिर वह भी तो उसे बातें बताता है। बोली—"किसी से कहना मत। वही ननद भौजाई का झगड़ा है।"

किसी की समझ में यह बात नहीं आई, क्योंकि मालिक की एक मात्र बहन, इन्दिरा, यहां बहुत कम आती है। बम्बई या पूना रहती है। उसके पति कोई बड़े अफसर हैं। गत दो साल से नहीं आई। फिर झगड़ा कैसा? फिर भी सब लोगों ने इस बात को मान लिया, और यह जानकर खुश हुए, कि जो कमजोरी उन गरीबों में है, वही बड़े आदमियों में भी है। रामखेलावन शायद और भी कुछ पूछता, पर उधर कुछ खटका सा मालूम हुआ। तुरन्त सब लोग अपने अपने काम में लग गये। पांडे बड़े जोर से गोड़ा को चलाने लगा। हरखू जाकर झाड़ू देने लगा। और रामखेलावन भंडार में कुछ करने लगा।

पर मालकिन आई नहीं। जो आवाज हुई थी, वह इस कारण हुई थी, कि रेखा ने एक बक्स हटाया था। वह इस समय सारे कमरे की तलाशी ले रही थी। उसकी बुद्धि ने उसे बताया था, कि यदि रामविलास बाबू इस नीला से प्रेम करते हैं, तो अवश्य ही उसका फोटो भी यहीं कहीं होगा। रेखा उस फोटो की तलाश में सारे कमरे को ढूंढ़ रही थी, और उसे यह तलाशी जल्दी ही खतम करनी थी, क्योंकि अब बच्चों के स्कूल से आने का समय हो रहा था।

वह जल्दी जल्दी रामविलास बाबू के बक्सों को, सूट केसों को खोलती, और खोजती जाती थी। पर कहीं कोई फोटो नहीं मिला। हां, कुछ पुराने पत्र मिले, जो रेखा ने कुमारी अवस्था में रामविलास बाबू को लिखे थे। रामविलास बाबू ने उन्हें बड़े यत्न के साथ एक रेशमी रूमाल में बांध कर रख छोड़ा था। उस पोटली में रेखा का एक फोटो भी था। उन दिनों उसकी उम्र १६ साल की थी।

पर, इन पत्रों तथा फोटो को देख कर रेखा को कुछ प्रसन्नता नहीं हुई, बल्कि कुछ कष्ट ही हुआ। हाय, रामविलास कितने अच्छे थे, पर इस नीला ने उन्हें बिगाड़ दिया। अपने एक पत्र को रेखा ने उठाया, उस में लिखा था—"प्रियतम,...यदि मैं इतना ही लिखूं कि तुम्हें प्यार करती हूँ, तो वह मिथ्या होगा। मेरा रोम रोम तुम्हारे रोम रोम के लिये लालायित हो रहा है। तुमने मुझे लिखा है, कि मैं सौंदर्य की रानी हूँ। काश, मेरा सौंदर्य तुम्हारे दिल बहलाव का सामान हो सकता, तो मैं इसे सार्थक समझती। तुम मेरे प्रियतम, नहीं, देवता हो...।"

रेखा आगे न बढ़ सकी। उसकी आंखों से अश्रु जारी हो गये। उसने उस सोख्ते के टुकड़े को निकाल कर देखा। हां, उसमें सचमुच 'प्यारी नीला' छपा था। इसमें कोई सन्देह नहीं।

सोख्ते को देखते देखते एक विचार उसके मन में आया। रामविलास बाबू हमेशा फाउन्टेन पेनों से लिखते हैं। और अच्छे फाउन्टेन पेनों की लिखाई पर कभी सोख्ते से छापने की जरूरत नहीं पड़ती। फिर? वह एकाएक हर्षित हो गई। नहीं, सन्देह झूठा है। ऐसा कभी नहीं हो सकता। जो व्यक्ति बराबर फाउन्टेन पेन से लिखता है, वह अपनी प्रियतमा को लिखने के लिये उसे छोड़कर, मामूली स्याही तथा मामूली चार पैसैया कलम का इस्तेमाल क्यों करेगा?

उसने अपने मन में अपने को फटकारा, कि उसने व्यर्थ ही अपने पति पर सन्देह किया। पति के प्रति प्रेम की भावना से उसका हृदय

परिप्लावित हो गया। उसका प्रियतम, यौवन का सहचर, जीवन का सहयात्री, उसके बच्चों का बाप, उसका प्राणेश्वर !

पर उसके हाथ में वह सोख्ते का टुकड़ा था। उसे उसने फिर देखा, और उसकी यह सुन्दर भावना फिर दूर हो गई। फिर वह सन्देह के भंवर में गोते खाने लगी।

बच्चों के आने का समय हो रहा था। उसने जल्दी से बक्सों को ठीक ठाक किया। पत्रों को जहां का तहां रख दिया, सोख्ते के टुकड़े को ले जाकर छिपा दिया, और मुंह धोकर रसोई घर की तरफ यह देखने चली, कि बच्चों का नाश्ता तैयार हो गया या नहीं। फिर उसे 'ओट्स' की खीर अपने हाथ से बनानी थी। पांड़े इस चीज को कभी बना ही नहीं पाया। और छोटे बच्चे, हिमालय उर्फ हिमू, को यह बहुत पसन्द थी।

जाने को तो रसोई घर में वह गई, पर उसका मन आज किसी काम में नहीं लग रहा था। वह चाहती थी, कि जल्दी से जल्दी वह रामबिलास से मिले। अभी वह निश्चय नहीं कर पा रही थी, कि पति से वह सीधा सवाल करे, या कि परीक्षा रूप से जांच करे। सीधा सवाल करने के सम्बन्ध में वह यह सोचती थी, कि कहीं इससे कुछ नुकसान न हो। कोई व्यक्ति यह थोड़े ही स्वीकार करता है, कि वह दुराचारी है। फिर अपनी पत्नि के सामने ? इस कारण सीधा प्रश्न करना व्यर्थ था।

यही सब सोच रही थी। इतने में बच्चे स्कूल से आ गये। विन्ध्या और हिमू उसकी आंखों के तारे थे। कैसा ही दुःख हो, इनको देखते ही दूर हो जाता था। वह इनको खिलाने पिलाने में सारा दुःख भूल गई। पर जब लड़के खा पी लेने के बाद जाने लगे, तो उसे ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे वह अकेली, बिल्कुल अकेली हो जायगी। उसने लड़कों को रोकना चाहा; पर विन्ध्या को मैच खेलना था, सो वह नहीं रुका। हिमू को

लोभ दिखला कर, फुसलाकर रेखा ने रोक लिया। फिर वह उसे भीतर ले जाकर ऐसे प्यार करने लगी, चूमने लगी, मानो वह उससे बिछुड़ रही है। हिमू की उम्र सात वर्ष की थी। वह अपने को खासा बड़ा और बुद्धिमान समझता था। वह शरमा गया, घबरा गया।

रोज के समय पर रामबिलास बाबू आये। रेखा ने उनके चेहरे को ध्यान से देखा। पर चेहरे से क्या पता लगता! थके हुए जान पड़ते थे, पर अधिक थके हुए नहीं। हिमू सो गया था, और विन्ध्या सोने जा रहा था।

रोज के नियम के अनुसार रामबिलास बाबू ने गरम पानी से हाथ मुंह धोया, फिर कुछ जलपान किया। जलपान करने के घंटा भर बाद वे स्त्री के साथ भोजन करते थे। आज भी ऐसा ही हुआ।

मुंह धोकर जलपान करते समय इधर उधर की बात के साथ ही रेखा एकाएक पूछ बैठी—"तुम्हारी यह कलम नई मालूम होती है?"

"नहीं, नहीं, यह तो वही कलम है। यह पांच साल से मेरे पास है।"

रेखा ने मुंह बना लिया, क्योंकि इस प्रश्नोत्तर से वह जिस विषय के सम्बन्ध में जांच करना चाहती थी, उस पर कोई रोशनी नहीं पड़ी। फिर भी उसकी आंखें पति की जेब में लगे फाउन्टेन पेन पर गड़ी हुई थीं, मानों वह उसे देखकर ही उनके हृदय के सारे रहस्यों को जान लेना चाहती थी। उसने ठहर कर प्रश्न किया—"यह वही पेन है, जो 'लीक' करता था, और इस लिये सोख्ता रख कर लिखना पड़ता था?"

"नहीं तो। यह पेन कभी 'लीक' नहीं करता था। इसमें बस, एक ही दोष है। पूरी स्याही नहीं भर पाता। पांच पन्ने से ज्यादा एक साथ लिखता नहीं। पर है बहुत अच्छे मेक का। रामबिलास खाना समाप्त कर चुके थे। अब वे मुंह धोने लगे।

रेखा बोली—"तब तो किसी को लम्बी चिट्ठी लिखने के लिए यह कलम अच्छी न होगी। इसके बजाय तो मामूली कलम दवात ही तुम पसन्द करोगे ?"

रामबिलास बाबू हंस पड़े। बोले—"माई गाड, लम्बी चिट्ठी। मैं तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। मुझे तो याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी किसी को एक पन्ने से अधिक की चिट्ठी लिखी हो।" और वे सिगरेट सुलगा कर पीने लगे।

रामबिलास बाबू ने ये बातें बहुत ही अच्छे लहजे में प्रफुल्ल होकर कही थीं, पर न मालूम क्यों, रेखा को ये पसन्द नहीं आई। उसे ऐसा मालूम हुआ, कि रामबिलास अभिनय कर रहे हैं। चिढ़कर बोली—"क्यों झूठ बोल रहे हो ? मुझे तुमने पचीस पचीस पन्ने के पत्र नहीं लिखे थे ?"

"हां, हां, सो क्यों नहीं ?" रामबिलास बाबू फक से धुआं आसमान की ओर मारते हुए बोले—"पर यह पन्द्रह साल पहले की बातें हैं। इस समय यदि मैं तुमको उतने लम्बे पत्र लिखूं, यानी यदि तुम्हारी उम्र इस समय १६ की और मेरी २४ की हो, और मैं तुम्हें उतने लम्बे पत्र लिखूं, तो तुम मुझे देहाती समझो, और मेरा 'लव कैंसिल' हो जाय।"

रेखा ने इसका और मतलब लगाया। बोली—"तो आप इस जमाने की प्रेम कला से भी अभिज्ञ हैं!"

रामबिलास कुछ झेंप गये। पर वे व्यापारी थे, और दिन भर बातें किया करते थे। बोले—"शादी नहीं करता, तो बारात तो करता ही हूं। फिर क्यों न मालूम हो ?"

रेखा ने कहा—"पर मालूम तो ऐसा होता है, कि बारात से अधिक तजुर्बा है आपको।"

रेखा कभी ऐसे बात नहीं करती थी, इसलिए रामबिलास बाबू ने सारी बातों को मजाक के रूप में लिया। रेखा भी कुछ सोच कर आगे न बढ़ी; पर उसे खटका हो गया था, वह और भी बढ़ गया।

उस रात को बात यहीं तक रही। पर अब रेखा जब तब रामखेलावन को भेज कर खबर लेती, कि बाबू दफ़्तर में हैं कि नहीं, और हैं तो कहीं उनके साथ कोई स्त्री तो नहीं है। रामबिलास बाबू आते, तो यह उनकी जेबों की, मनी बेग की, चुपके से तलाशी लेती, उनके कपड़ों को सूंघती, कि कहीं किसी अन्य स्त्री के शरीर की बू तो उनमें नहीं है। अपने पति के शरीर की बू को वह भली भांति पहचानती थी, और उसे यह दृढ़ विश्वास था, कि यदि किसी और स्त्री की बू उससे संयुक्त हो, तो वह उसका पता पा सकेगी।

पर किसी तरफ से कोई सुराग नहीं मिला। यदि रामबिलास नीला से प्रेम करते होंगे, क्योंकि कुछ पता नहीं लगता था। फिर पता भी कैसे लगे ? जो व्यक्ति दिन भर बाहर रहता हो, वह क्या करता है, क्या नहीं करता, इसका कैसे पता लगे ? वह अपने भाग्य को कोसने लगी, कि उसके भाग्य में यह नीला कहां से आ मरी। जिस दिन से नीला की बात मालूम हुई थी, उस दिन से उसका जीवन असहनीय हो गया था। पति को देखती, तो सन्देह होता, क्रोध होता। बच्चों को देखती, तो रोना सा आ जाता। "हाय, इन मासूम बच्चोंने किसी का क्या बिगाड़ा है ? पर नीला इनका भी सर्वनाश कर रही है। पता नहीं, किस दिन सारी जायदाद, मकान सब अपने नाम लिखवा ले।"

इसी प्रकार की विकल मानसिक अवस्था में एक दिन रेखा ने कहा बच्चों के नाम कुछ रुपये कर दो तो अच्छा रहे।

"क्यों ?" रामबिलास ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"बात यह है, कि बगल के वकील साहब ने अपने दस साल की उम्र के लड़के के नाम से ५०० रुपये जमा कर रक्खे हैं। इसी लिए मुझे भी यह ख्याल हुआ।"

रामबिलास बाबू कुछ सोच कर बोले—"यह कौन बड़ी बात है ? पांच सौ नहीं एक एक हजार जमा कर दूंगा। पर यह सब है बेवकूफी।

वे ही दो हजार मेरे पास रहेंगे, तो पांच साल में चार हजार हो जायगे। और वहां बैंक में क्या मिलेगा ? दो हजार के पचीस सौ भी तो न होंगे। खैर, जैसी तुम्हारी इच्छा।"

इस पर रेखा बोली—"पर व्यापार में घाटा भी तो होता है।"

"बैंक भी तो फेल होते हैं।"

रामविलास ने और भी समझाया; पर जब रेखा ने फिर भी जिद की, तो अगले दिन उन्होंने दोनों बच्चों के नाम अलग अलग दस साल के 'फिक्सड् डिपाजिट' पर ढाई ढाई हजार रुपये जमा कर दिये, और रसीद लाकर रेखा को दे दी। कहा—"लो। पर बच्चों को न बताना। उन्हें मालूम हो जायगा, कि इतने रुपये उनके नाम से जमा हैं, तो उनका दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ जायगा।"

रेखा ने रसीद लेते हुए कहा—"सो क्यों ? उन्हें क्या मालूम नहीं है, कि उनके पिता कोई भिखमंगे नहीं हैं ?"

"सो मालूम होना ठीक है। पर यह मालूम होना, कि उनके नाम बैंक में इतने रुपये हैं और बात है। वे बच्चों में डींग मारेंगे।"

रेखा की समझ में बात आगई। पर पति ने इतनी आसानी से उसकी बात मानली, इससे उसका भय कुछ बढ़ा ही। इस बात में तो रेखा को सन्देह नहीं था, कि रामविलास बच्चों को प्यार करते हैं; पर उसने सोचा, कि उन्होंने उसकी बात इस सम्बन्ध में इतनी जल्दी शायद इसलिए मानली, कि वे खुद ही नीला से उन लोगों को बचाना चाहते थे, वह किसी निश्चय पर नहीं पहुंच सकी।

पर 'जिन खोजा तिन पाइयां'—एक दिन सवेरे रामविलास 'स्टेट मेण्ट' हाथ में लेकर, एकाएक बोले—"मैं आज रात को शायद कुछ देर से आऊंगा। तुम मेरा इन्तजार न करना"। कहकर, वे उठ खड़े हुए, और तैयारी करने लगे।

दफतर वे कुछ देर से गये, और आज बहुत बढ़िया सिल्क का सूट पहन कर गये।

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। कभी कभी वे रात में जरूर देर से आते थे, पर शेयर होल्डरों की मीटिंग और चैम्बर आफ कामर्स की मीटिंग के कारण। लेकिन ऐसे मौकों पर हमेशा कई दिन पहले से खबर रहती थी। और आज तो अखबार देख कर तय किया। फिर सिल्क का सूट।

जब रामबिलास चले गये, तो रेखा 'स्टेटसमैन' देखने लगी। वह इस बात का पता लगाने लगी, कि कौन सी खबर ऐसी थी, जिसे देख कर उन्होंने रात में देर से आने की बात कही, और सज धज कर कार्यालय गये। वाणिज्य व्यवसाय के स्तम्भों में कोई भी ऐसी खबर नहीं थी। वह निराश होकर अखबार को पटकने ही वाली थी, कि 'व्यक्तिगत' शीर्षक सूचनाओं में से एक पर उसका ध्यान गया। उस सूचना का शाब्दिक अनुवाद यों है—

"प्रिय,

ग्रांड में रात साढे आठ बजे जरूर!

तुम्हारी—

नीला।"

इस सूचना को देखना था, कि रेखा का माथा ठनक गया। वह समझ गई, कि यही नीला है, जो उसके जीवन को नष्ट करने पर तुली हुई है। "यह बात है! तो आज ग्रांड होटल में गुलछर्रे उड़ेंगे। न जाने ऐसा कितनी बार हुआ होगा।" उसे इस बात का अफसोस हुआ, कि वह अब तक इस पत्र की व्यक्तिगत सूचनाओं को नहीं देखती थी।

इन बातों को सोचकर, रेखा बिल्कुल एक बदली हुई स्त्री हो गई। उसमें न भय रहा, न लज्जा। यहां तक कि उसमें बच्चों के प्रति मोह भी नहीं रहा। बस, वह क्रोध और फिर प्रतिशोध की प्रति मूर्ति बन गई।

उसने मन में निश्चय कर लिया, कि वह एकाएक ग्रांड होटल में पहुंचेगी और फिर दिखला देगी, कि एक अपमानित हुई स्त्री क्या कर सकती है। वह नीला को बतलायेगी, कि एक शरीफ स्त्री के साथ दगा करने का क्या नतीजा हो सकता है। और रामबिलास बाबू को भी वह एक गहरा सबक देगी। वह उन्हें घसीट लायेगी, और बच्चों तथा नौकरों के सामने अपमानित करेगी।

उसने मन में तय कर लिया, कि वह यह सब करेगी। पर ज्यों ज्यों ग्रांड होटल जाने का समय करीब आने लगा, त्यों त्यों उसके हाथ पैर ढीले पड़ने लगे। उसे रोना सा आने लगा। उसे ऐसा ज्ञात होने लगा, कि उसके लिए ग्रांड होटल जाना असम्भव है। जिस खूंटे के बल पर वह उछल सकती थी, वह उसका पति ही तो था। पर अब—

सन्ध्या के छः बज गए। उसने अनुभव किया, कि किसी की सहायता के बगैर उसके लिए होटल जाना असम्भव है। वह कोई पर्दानशीन स्त्री नहीं थी। विवाह के पहले तथा बाद में बहुत दिनों तक वह बराबर होटलों तथा रेस्तरां की हवा खाती रही थी। पर अब बच्चों के कारण तथा अन्य गृहस्थी के झंझटों के कारण वह घर से बाहर बहुत कम निकलती थी। रस्तरां तथा होटलों में जाने की बात दूर रही।

जब सात बज गये, तब रेखा के लिए वह परिस्थिति आ गई, कि अभी या कभी नहीं। उसका पति एक बाजारू औरत के साथ गुलछर्रे उड़ाने जा रहा है। हां, उसकी कल्पना में नीला एक बाजारू औरत ही थी। बाजारू नहीं, तो क्या? जो स्त्री इस प्रकार बुला बुला कर एक विवाहित व्यक्ति को लुभा सकती है, वह एक वेश्या से कम नहीं।

जाना तो है ही, पर कैसे जाया जाय? किसे वह साथ ले? नहीं, अकेली तो वह जा नहीं सकती। फिर? नौकरानी को साथ लिया जाय? पर ग्रांड होटल में ऐसी नौकरानी कैसे जा सकती है? शायद उसे घुसने

ही न दिया जाय। तो किसी दरबान को साथ लिया जाय ? नहीं, यह बात भी ठीक नहीं। बड़ी भद्दी होगी। फिर ? चलना तो है ही।

वह निकल पड़ी। एक टैक्सी ले कर, वह एक मकान में पहुंची। बिजली की घंटी बजाई। भीतर से एक दरबान निकला।

"साहब हैं ?" रेखाने पूछा। पूछने को तो उसने पूछ लिया, पर वह मनही मन पछताती रही थी, कि वहां क्यों आई। पर अब तो आ ही चुकी थी।

दरबानने कहा—"कौन साहब ?" दरबान उसे घूर रहा था।

रेखाने कहा—"ऋषभ साहब। ऋषभजी से मिलना है मुझे।"

"हां, वे हैं, बैठिये—" कहकर, उसने भीतर सोफे की तरफ इशारा किया। फिर बोला—"क्या कहूँ ?"

अन्दर एक सोफे पर बैठकर वह बोली— "कह दो, कि मिस वर्मा आई हैं।"

उसके मुंह से यह परिचय निकल गया। कभी वह मिस वर्मा थी, पर इस समय तो वह "मिसेज" थी। पर उसने दरबान से अपना असली परिचय छिपाने के लिए ही ऐसा कहा था। रहा ऋषभ सो वह तो जानता ही है कि उसका विवाह हुए वर्षों हो चुके हैं।

थोड़ी ही देर में ऋषभ आ गया। बहुत सुन्दर पोशाक में था। वर्षों से भेंट नहीं हुई थी, पर उसके चेहरे में कोई फर्क नहीं था। वही नटखट हंसी, वही लापरवाही।

ऋषभ ने हंस कर कहा— "ओह रेखा, तुम हो। व्हाट गुड लक ! कहो, मेरा यह भाग्योदय कैसे हुआ ?" कह कर, उसने एक पारखी की तरह रेखा को देखा। फिर बोला—"माई गाड ! बिल्कुल वैसी ही बनी हो, बल्कि कुछ और अच्छी लग रही हो !"

रेखा को जरा सा डर मालूम हुआ। पर उसने मन को समझाया, कि पति एक बाजारू स्त्री से प्रेम करते फिरें, और उसे यह भी अधिकार

नहीं, कि एक शरीफ व्यक्ति से बोले ?— "यही बात मैं भी कह सकती हूँ ! आप वैसे ही हैं, जैसे दस साल पहले थे !"

"धन्यवाद ! पर यह तो 'बताओ' कि यह कृपा कैसे हुई? और यह 'आप' की दीवार क्यों, जब आई ही हो तो ? हां तुम तो मुझे कभी 'आप' नहीं कहती थीं !"

रेखा ने कलाई घड़ी की तरफ देखा। सात बज कर पच्चीस मिनट हो चुके थे। उसने मन में कल्पना की, कि 'अब मिलन हो रहा होगा। वे तो रेशमी सूट में होंगे, और वह बैंगनी साड़ी में होगी, क्योंकि उन्हें यही रंग सब से अधिक पसन्द है। उस चुड़ैल ने इतने दिनों में क्या इस बात का पता नहीं पाया होगा ? जरूर पाया होगा। और बाजारू औरतों क पास क्या होता है ?'

इस प्रकार सोच कर रेखा बोली—"तुम, अच्छा,' तुम !' क्या तुम फुरसत से हो ?"

"क्यों, क्यों ? खैरियत तो है ? कहां चलना होगा ? मैं तुम्हारे साथ नरक में भी चलने को तैयार हूँ। मैं जानता था, कि बारह साल में घूरे का भाग्य बदलता है ! सो मालूम होता है कि..."

उसकी बात काटते हुए, रेखा ने खड़ी होकर, कहा—" अच्छा, रहने दो ये सब बातें ! चलो, ग्रांड होटल में दो घड़ी बैठें ! बहुत सी बातें करनी हैं।"

"हां हां, चलो !" पूरी बात, विशेष कर ग्रांड होटल में चलने का आशय न समझ पाकर भी, ऋषभ बोला।

दोनों चल पड़े। फिर एक टैक्सी ली। पहले रेखा चढ़ी, फिर ऋषभ। जब गाड़ी चलने लगी, तब रेखा ने महसूस किया, कि उसने गलती की, क्योंकि ऋषभ उससे सट कर बैठ गया। यहां से ग्रांड होटल बहुत दूर पडता था। टैक्सी से भी बीस मिनट का रास्ता था।

पहले तो दोनों चुपाचाप बैठे रहे, अपने अपने विचारों में लीन, फिर ऋषभ ने उसके हाथ को पकड़ने की चेष्टा की। रेखा ने रोका। तब उसने उसके गले में हाथ डालना चाहा, पर रेखा ने फिर रोका। तब ऋषभ ने कहा—"रेखा"

"हां, ऋषभ!" कह कर, वह जरा हट गई।

"क्या मेरी साधना पूरी न होगी? तुम जानती हो, कि तुम्हारे ही कारण मैंने विवाह नहीं किया।"

रेखा ने उत्तर नहीं दिया। वह जानती थी, कि ऋषभ ने उसी के कारण विवाह नहीं किया था। रेखा की शादी के बाद सदा उसका स्वास्थ्य टूट गया था। साल भर सैनेटोरियम में रहने के बाद वह ठीक हुआ था। रेखा को ये बातें मालूम थीं। उस समय तो उसने इन बातों की परवाह नहीं की थीं, आज यह बातें स्मरण हो आई, तो उसे रामबिलास पर क्रोध आया। बारह साल से उपर हो गये, पर ऋषभ का रुख वैसा ही बना हुआ है। और वे ग्रांड होटल में एक बाजारू औरत के साथ गुलछर्रे उड़ा रहे हैं! ऐसा सोचते सोचते एकाएक उसके मन में यह बात आई, कि ग्रांड होटल में पति को पकड़ कर, उसका अपमान कर, और कलमुंही नीला को सबक देकर, यदि वह ऋषभ के साथ भाग जाय, तो कैसा रहे? ऋषभ जरूर उसे स्वीकार करेगा। रहे बच्चे! यह एक टेढ़ा प्रश्न है। पर जब रामबिलास को उनकी चिन्ता नहीं, तो वह ही क्यों चिन्ता करे?

ऋषभ ने फिर कहा—"जरा सोचो तो रेखा! अब तो मैंने प्रमाणित करके दिखा दिया, कि तुम्हारे सिवा मैं किसी और की बात सोच नहीं सकता।"

रेखा के मन में प्रतिशोध, निराशा, स्नेह, सतीत्व तथा कितनी ही अन्य बातें बारी बारी से आती रहीं। उसने कहा— "ऋषभ, तुम पुरानी बातों को इस तरह न उठाओ। चलो, ग्रांड होटल में बातें होंगी।"

ऋषभ ने और कुछ नहीं कहा, न फिर रेखा का हाथ पकड़ने की चेष्टा की, और न उसके गले में हाथ डाला। अलग ही बैठा रहा।

थोड़ी देर में टैक्सी ग्रांड होटल पहुंच गई।

ऋषभ ने कहा— "चलो, किसी प्राईवेट रूम में चलें।"

पर रेखा ने, चारों तरफ देखते हुए, कहा—" नहीं, हम लोग यहीं कहीं बैठें।"

"यहां कहां? रास्ते में?" —निराशा जनित झुंझलाहट में ऋषभ ने कहा। "नहीं, रास्ते में नहीं, हाल में ताकि आने जाने वालों को देख सकें?" रेखा ने कहा— "मैं आज फिर अपने को षोड्शी पा रही हूं। इच्छा हो रही है, कि सारे होटल को घूम घूम कर देखूं।"

ऋषभ ने कहा— "जैसी मर्जी तुम्हारी। पर होटल में धरा क्या है, जो देखोगी? कमरे हैं, हाल है, बर्तन हैं, वेटर हैं। मेरी तो राय है, कि चल कर किसी कमरे में बैठें। तुम तो कहती थीं, कि बातें करोगी!"

"पहले घूम लूं, फिर बातें करूँगी," कह कर, उसने घड़ी की तरफ देखा। उसमें आठ बज चुके थे।

रेखा इस समय चारों तरफ पैनी दृष्टि से देख रही थी, ठीक उसी प्रकार जैसे हवाई अड्डे में रात को सर्चलाइट घुमाई जाती है। वह शायद भूल गई, कि उसके साथ ऋषभ है। वह जल्दी जल्दी सिढ़ी चढ़ कर हाल में गई। फिर वहां सब को देखकर, वह ऊपर की मंजिल में पहुंची। कुछ कमरे बन्द थे। यहां कौन था, यह कैसे मालूम हो सकता था? पर बाकी सारे होटल को उसने देख डाला।

जब सारे होटल को देख लेने पर भी न रामबिलास का पता लगा, न बैंगनी साड़ी पहने हुए किसी नीला का, तो रेखा को बड़ी निराशा हुई। आठ बज कर बीस मिनट हो चुके थे। रेखा ने फाटक के पास लौट कर, अनुभव किया, कि ऋषभ उसके पीछे पीछे हैं। बोली—"अच्छा, ऋषभ उन कमरों में कौन हैं?"

ऋषभ बोला —"उनमें कुछ लोग टिके होंगे। कुछ तो केवल रात, भर के लिए टिके होंगे। वे कमरे दो चार घंटों के लिए ही मिल सकते हैं पर रात भर का किराया देना पड़ता है।"

"अच्छा, तो प्रेमी प्रेमिका भी उन कमरों को लेते होंगे?"

"हां, सो तो लेते ही हैं। चलो न, हम लोग भी एक लेलें। वहीं बात करेंगे।" आकुल आग्रह से ऋषभ ने कहा।

सामने बेरा आर्डर के लिए खड़ा था। दूर से गोरा मैनेजर भी इनकी तरफ देख रहा था। ऋषभ को बड़ी अजीब बेचैनी मालूम हो रही थी। वह समझ रहा था, कि सब लोग उसे ही देख रहे हैं। कहीं किसी परिचित व्यक्ति से भेंट न हो जाय, इस कारण वह शुतुरमुर्गी तरीके से किसी तरफ देख नहीं रहा था। पर इन सारी बातों का नतीजा यदि यह भी होता; पर उसका तो कुछ पता ही नहीं मिल रहा था।

रेखा ने एक वेटर को बुला कर कहा—"हमें ऐसी जगह पर बैठाओ, कि फाटक से आने जाने वाले दिखाई पड़ें। काम है।"

वेटर ने ऐसी एक जगह पर मेज लगा दी। फिर रेखा ने आर्डर दिया।

आठ बज कर तीस हो रहे थे। पर अभी तक रामविलास का पता नहीं था। रेखा के मन में अजीब द्वंद्व मचा हुआ था। यदि रामबिलास आकर उसे इस प्रकार ऋषभ के साथ देखे, तो? देखते। पर वह भी तो एक स्त्री, एक बाजारू औरत, के साथ होगा। उसे उपदेश देने को उसका मुंह कहां होगा? जो खुद पतित है, उसे अपनी पत्नी को उपदेश देने का हक ही क्या है?

पांच मिनट और बीत गये, पर कहीं कोई नहीं। दूसरे लोग आ जा रहे थे।

एकाएक रेखा ने कहा— "अच्छा, ऋषभ, अगर अभी मैं तय करू, कि तुम्हारे साथ भाग चलूँगी, तो तुम क्या करोगे?"

"मैं इसे अपना परम सौभाग्य समझूंगा।" ऋषभ ने बड़े तपाक से कहा।

रेखा का चेहरा पहले लाल और फिर सफेद पड़ गया। उसकी आंखें घड़ी पर थीं। दोनों चुपचाप नाश्ता करते रहे। रेखा की आंखें बार बार घड़ी तथा फाटक की ओर जाती थी। ऋषभ की आंखें रेखा के चेहरे पर डटी थीं। वह कुछ समझ नहीं पा रहा था, कि क्या मामला है।

एकाएक रेखा का चेहरा फक पड़ गया। वह खड़ी हो गई, और मालूम हुआ, जैसे वह पछाड़ खाकर गिरना ही चाहती है। ऋषभ ने देखा, कि एक मोटर से बैंगनी साड़ी पहने हुए एक तरुणी उतरी। मुश्किल से उसकी उम्र बाईस की होगी। न मालूम क्यों, रेखा को मालूम हुआ, कि यही वह नीला है। वह मोटर से उतर कर, इन्तजार करने लगी। मोटर में और लोग भी थे। रेखा के मन ने कहा, कि उनमें जरूर रामबिलास होंगे वह धड़कता हुआ हृदय लिये इन्तजार करने लगी। पर उसमें से पहले एक बच्चा उतरा, फिर एक कुत्ता, और फिर एक पुरुष। वह पुरुष रामबिलास नहीं था।

रेखा की जैसी जान में जान आई वह बैठकर चाय पीने लगी। पर उस का चेहरा अभी कागज सा सफेद पड़ा हुआ था।

ऋषभ ने कहा—"रेखा, क्या बात है? तुमने तो ऐसा चेहरा बना लिया, जैसे भूत देख रही हो!"

रेखा ने बात बनाते हुए कहा—"भूत से भी बढ़ कर! मैं समझी, कि ननदजी आ गई।"

"ओह यह बात है?" ऋषभ हंसा। फिर बोला—"इसीलिए तो मैंने कहा था, कि किसी कमरे में चलें।"

रेखा ने फिर बात बनाते हुए कहा—"पर, ऋषभ, यह तुम्हारी ज्यादती है। कमरे में जब तक बैठेंगे, तब तक तो ठीक रहेगा, पर अन्दर

जाते और निकलते समय भी तो किसी से भेंट हो सकती है। यहां भेंट हो तो कोई बात नहीं। सब ताश मेज पर हैं। पर उस हालत में जब मालूम हो जायगा, कि मैं एक पर पुरुष के साथ एक कमरे में थी, तो..."

ऋषभ ने कुछ कड़वेपन के साथ कहा—"पर तुम तो कह रही थी, कि मेरे साथ निकल चलोगी!"

"मैं पूछ रही थी, कि तुम क्या करोगे।" रेखा ने घड़ी की ओर देखा। ९ के करीब हो रहा था।

इसके बाद बहुत कम लोग होटल में आये। जानेवालों का तांता ही रहा। सवा नौ बजे एकाएक रेखा ने फैसला किया, कि चलना चाहिये। होटल से निकल कर, उसने एक टैक्सी ली, और ऋषभ से विदा मांगते हुए कहा—"जाती हूं। काफी रात हो गई।"

ऋषभ ने गाड़ी पर चढ़ने की इच्छा से दरवाजा खोलना चाहा, पर रेखा बोली—"मुझे जल्दी है। मैं सीधे घर जा रही हूं।" और उसने ड्राइवर को चलने का इशारा किया।

गाड़ी चलने लगी।

ऋषभ जहां का तहां खड़ा रह गया। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसने एक अर्थहीन स्वप्न देखा हो।

२

रेखा घर पहुँची, तो मालूम, हुआ कि रामबिलास उसके निकलने, के बाद ही घर आ गए थे।

रामबिलास बोले—"शेयर होल्डरों की एक मीटिंग बुलाई थी, पर कोरम पूरा नहीं हुआ। इसलिए जल्दी ही लौट आये।" "फिर जरा रुक कर पूछा—"तुम कहां गई थीं?"

रेखा ने एक सहेली का नाम ले दिया। पर वह पहले से अधिक गड़बड़ी में पड़ गई। 'स्टेट्समैन' की नीला ने किसी को ८-३० पर बुलाया था और ये तो ८ बजे से ही घर पर डटे हैं। तो इसका अर्थ यह हुआ, कि वह नीला और थी। और इसी मरीचिका का अनुसरण कर, उसने ऋषभ के साथ दो घंटे बितायें; और इस बीच में उसने न मालूम क्या क्या कहा। उस समय तो वे बातें कुछ अधिक मूर्खतापूर्ण ज्ञात नहीं हुई थीं; पर इस समय पति को रोज की तरह घर पर बैठा देख कर, उसे उन बातों के लिए ग्लानि अनुभव होने लगी। पति के दुराचार का प्रमाण न मिलने पर उसे निराशा हुई, पर साथ ही खुशी भी हुई। उसने मन में दो एक बार अपने से कहा, कि शायद उसका सन्देह गलत था, शायद उसकी आशंकायें निरर्थक हैं। पर वह सोख्ते का टुकड़ा ?

इसी प्रकार हर्ष, विषाद, सन्देह, विश्वास, भय, आशा, ग्लानि, आनन्द के आवेश में उसकी अद्भुत हालत हुई। सोते समय उसके सिर में दर्द था। सवेरे देखा गया, कि उसे १०२ डिगरी का बुखार है।

जब दो दिन तक बुखार डटा रहा, तो इलाज भी होने लगा। पर तरह तरह का इलाज करने पर भी बुखार छूटा नहीं। रामविलास दिन में चार छः सर्तबा उसे देखने घर आते। और घर में वे जब रहते, तो उसी के पास रहते। पर उस सन्देह के होने के कारण पति की कोई भी बात उसे पहले की तरह अच्छी न लगती। सब बातों में उसे चाल ही दिखाई पड़ती।

रेखा को इन दिनों बस, बच्चों की चाह बनी रहती। बच्चे स्कूल जाते, और फिर खेलने चले जाते हमेशा की तरह। उन्हें क्या पता था, कि मां समझ रही है, कि वह अब बचेगी नहीं? रोगी की मनोवृत्ति के अनुसार रेखा को बच्चों की यह बात बहुत बुरी लगती। वह इन दिनों चिड़चिड़ी हो गई थी। समझती, कि बच्चे स्वार्थपरता बरत रहे हैं।

हिमू तो आता भी था, पर विन्ध्या का कहीं पता नहीं लगता था।

जब आता भी, तो फौरन चला जाता। एक दिन हिमू से रेखा ने कहा—"तेरे भैया को क्या हुआ है, रे ? कहां रहता है ? मैं मर रही हूं, और उसका पता नहीं। बस, सोने सोने को घर आता हैं।"

हिमू अपने भैया को प्यार करता था। पर वह यह चाहता था, कि मां उसे अधिक प्यार करे। बोला—"रज्जु बाबू के घर में खेलता हैं।"

झुंझला कर रेखा बोली—"क्या उसके घर द्वार नहीं हैं, कि जब देखो तब रज्जु बाबू के घर में घुसा रहता हैं ? कभी कभी जाय तो कोई बात नहीं. पर हर वक्त वहां डटे रहने के क्या माने।"

हिमू ने अपनी सुर्खरूई दिखाते हुए कहा—"मैं तो बस स्कूल जाता हूं, और तुम्हारे पास रहता हूं।"

बात यह थी, कि वह भी रज्जु बाबू के यहां के लड़कों से खेलने जाया करता था ; पर दो दिन हुए, एक झगड़ा हो गया था, इस कारण उसका जाना कम हो गया था।

रेखा ने कहा—जाकर उसे बुला लो।

हिमू विन्ध्या को बुलाने गया, पर लौटा नहीं। रेखा और चिढ़ गई इन दिनों वह रामविलास से कोई अनुरोध नहीं करती थी, पर उस दिन उसने पति से कहा—तुम लड़कों को देखते नहीं। बिलकुल आवारे हुए जा रहे हैं। मेरे मरने के बाद तो आवारे हो ही जायेंगे, पर मेरे जीते जी तो ऐसा न होना चाहिए।

उस दिन रामविलास बाबू ने दोनों बच्चों को कनैठी दी। हिमू रोपड़ा रेखा ने चुप कराया। पति पर बिगड़ गई। बोली ...,, मैंने यह थोड़े ही कहा था कि कान उखाड़ लो ! न मालूम कैसे हुए जा रहे हो !,,

रामविलास बाबू कुछ नहीं बोले, चुप रहे। बच्चे पर कनैठी का प्रभाव यह हुआ, कि वे दो एक दिन मां के पास ही रहे। पर बच्चे तो थे ही, फिर भागने लगे। तब रेखा ने फिर पति से कहा ...,,सचमुच लड़के खराब हो

गये। कनैठी दो, चाहे जो करो, पर उन्हें ठीक करो। यह क्या, कि भिखमंगों की तरह हमेशा दूसरों के घर डटे रहते हैं?"

उस दिन फिर कनैठी लगी। अगले दिन लड़के घर पर रहे। हिमू तो मजे में रहा, पर विन्ध्या उमुर मुसुर करता रहा। फिर मां से बोला—"सबक याद करना हैं।"

यह कह कर वह बगल के कमरे में चला गया। फिर उसने हिमू को बुलाया। थोड़ी देर में जब रेखा की झपकी टूटी, तो उसने दोनों लड़कों को नाम ले लेकर पुकारा।

विन्ध्या तो आया, पर हिमू गायब था।

रेखा ने विन्ध्या से पूछा— "कहां गया, रे, हिमू?"

विन्ध्या ने कहा—"पता नहीं, खेलने गया होगा।"

थोड़ी देर में हिमू आया, तो रेखा ने कहा—"कहां गया था, रे? फिर तू रज्जु बाबू के घर गया था? आज खूब पिटवाऊंगी! आने दे उन्हें!"

हिमू ने सन्देहपूर्ण दृष्टि से विन्ध्या को देखा। उसने समझा कि यह सारी शरारत भैया की है। बदले की भावना उभर आई। रूआंसा हो कर बोला—"इन्होंने ही तो मुझे भेजा था। चिट्ठी देकर भेजा था। और तुम से चुगली कर दी।"

विन्ध्या ने सफाई में कहा—"नहीं, झूठ बोल रहा है।" वह बड़ा था। उसे निश्चय था, कि चिट्ठी तो दे दी गई होगी, अब क्या हो सकता है।

पर चिट्ठी दी नहीं गई थी।

हिमू ने कहा—"नहीं, मा, देखो, यह चिट्ठी है। नीला दीदी के पास भेजी थी इन्होंने। पर वह मिली नहीं। इनके लिए मैं रुका था। कह कर, उसने मां के हाथ में चिट्ठी दे दी।"

रेखा चिट्ठी ले ली। उसमें लिखा था—

"प्यारी नीला, मैं खेलने नहीं आ सकता। मां बीमार है, सो बिगड़ती है। स्कूल जाते वक्त कल मिलूंगा।

विन्ध्या।"

पत्र पढ़ कर, रेखा फौरन उठ बैठी। 'प्यारी नीला'। बिलकुल सोख्ते की तरह की हस्त लिपि! तो नीला यह है, और लेखक विन्ध्या। बाप, बेटा दोनों की हस्त लिपि हूबहू एक है।

विन्ध्या समझ रहा था, कि उसका पत्र पढ़ कर मां बिगड़ेगी। पर उसने हिमू से पूछा—"नीला कौन है?"

हिमू इस समय पूरी तरह चुगली करने पर उतरा हुआ था। बोला, "रज्जू बाबू की लड़की है। तुम नहीं जानतीं उसे। नन्ही कह कर पुकारते हैं उसे। भैया अपनी मिठाई, बिस्कुट, सेव ले जा कर उसे देते हैं, और उसके कहने पर मुझे मारते भी हैं!"

सारी बात रेखा की समझ में आ गई। बोली—"तू और भी चिठ्ठीयां ले गया था?"

"हां, बराबर ले जाता हूं। जब कभी नीला दीदी के यहां किसी से भैया का झगड़ा हो जाता है, तो ये चिट्ठी भेजते हैं। एक एक चिट्ठी एक बिस्कुट देते हैं।"

रेखा उठ खड़ी हुई। इसी नीला के कारण वह परेशान थी। कितना कष्ट पाया उसने। वह हँसी। इच्छा हुई, कि अभी पति के पास दौड़ी जाय।

फौरन दरबान दौड़ाया गया। रामबिलास बाबू घबड़ा कर आये। पर उसने उसे सारा किस्सा सुनाया। यहां तक कि ग्रांड होटल की कहानी भी नहीं छोड़ी। रामबिलास सुन कर हंसे। पर रेखा रो रही थी।

उसी दिन रेखा का बुखार उतर गया, और वह तेजी से अच्छी होने लगी।

सब कुछ हुआ, पर हिमू की समझ में यह नहीं आया कि विन्ध्या को कनैठी के बजाय आलिंगन क्यों मिला, और उस दिन से मां नीला को बुला कर बिस्कुट और मिठाई क्यों खिलाने लगी।

महान अमीर ने अखबार निकाला

अफगानिस्तान में जिस समय पहले पहल समाचार पत्रों का प्रकाशन आरंभ हुआ, उस समय की यह कहानी है।

उस समय जो अमीर अफगानिस्तान के शासक थे, उनका हम नाम न लेंगे। सुविधा के लिए उनका उल्लेख केवल 'महान अमीर' कहकर करेंगे।

महान अमीर देश विदेश की बातों से परिचित थे। वे विदेश में हो भी आए थे। उन्होंने एकाएक एक दिन सोचा कि यदि अपने देश को अन्य सभ्य देशों की पंक्ति में लेना है तो यहां भी अखबार छपने चाहिए। फिर क्या था, हुक्म हो गया कि अब अफगानिस्तान में अखबार निकलेगा।

चारों तरफ यह खबर बिजली की तरह फैल गई। अधिकतर मुसाहिब व उमरा महान अमीर की हां में हां मिलाने वाले थे। पर महान अमीर के इस निर्णय को सुनकर वे भी चिंतित हो उठे। कुछ को यह संदेह हुआ कि न मालूम इस नई सनक से देश की भलाई होगी या देश कुफ्र

के गढ़े में गिर पड़ेगा। कई तो इतने उद्विग्न हो उठे कि जब मुंह से कुछ कहते न बना तो मस्जिद में जाकर दुआ मांगने लगे—"या खुदा, जो बात वतन के लिए अच्छी हो वही हो।"

जो उमरा तथा अन्य बड़े लोग इतने राजभक्त नहीं थे, उन्होंने दरबार के बाहर कानाफूसी करदी—"बस, अब तो हुक्म हुआ कि अखबार निकालो; कल हुक्म होगा कि अपनी बीवियों को निकालो और उन्हें लाकर दरबार में नचाओ......"

इस पर एक ख़ान ने अपनी दाढ़ी पर गुस्से में हाथ फेरते हुए कहा—"यह तो मुझे भी शक है, पर मैं ऐसा वैसा नहीं; मेरी भी रगो में सेलजूका खून बह रहा है। अपनी बहू बेटियों की आबरू बचाने के लिए मैं खुद एक सौ कत्ल कर डालूंगा।"

यह चर्चा जनता में भी पहुंची। जनना में अधिकतर अनपढ़ लोग थे। शेष जो पढ़े लिखे थे, उन्होंने सारी विद्या मुल्लाओं से पाई थी। एक ऐसा ही पढ़ा लिखा अफगान बोला—" वाह, अख़बार कैसे निकल सकता है? जो बात हमारे पैगम्बर के जमाने से नहीं हुई, वह अब कैसे हो सकती है?"

उपस्थित लोग इस तर्क से प्रभावित हुए। पर एक एक व्यक्ति ने दबी जबान में कहा—"भई अखबार है क्या बला?"

जिस व्यक्ति ने विरोध किया था, उसे इस सम्बन्ध में ठीक पता नहीं था; पर तो भी उसने अनुमान से कहा—"उसमें खबरें छपा करेंगी?"

दूसरे व्यक्ति ने पूछा—"खबरें कैसी?"

प्रथम व्यक्ति ने कहा—"यही कि किसकी बहू बेटी भाग गई कौन फांसी पर चढ़ा, कौन भाग गया..."

कहने वाला कुछ और भी कहना चाहता था, पर उसे कुछ अधिक मालूम नहीं था।

अब तो उपस्थित लोग बहुत बिगड़े। एक व्यक्ति बोला—"तोबा

तोबा, मैं तो समझता था कि कुछ खुदा रसूल की बातें छपा करेंगी; पर यह तो बिल्कुल कुफ्र है, कुफ्र। तोबा ! तोबा !"

जमाव देखकर इधर उधर से लोग भी आ गये। इस प्रकार जब भीड़ बढ़ गई और लोग गरमागरम बातें करने लगे तो पोलिस आ पहुंची। थानेदार ने पूछा—"कौन लोग हो ?"

इससे पहले कि प्रश्न का उत्तर मिले, पुलिसवालों ने बंदूकें उठाकर धड़ाधड़ फायर करने शुरू कर दिये, दो तीन लाशें गिर गईं, कुछ घायल हुए और शेष जनता भाग गई।

पर फिर भी अखबार तो निकलना ही था। महान अमीर की आज्ञा टलती कैसे ? छापाखाना तो पहले ही से मौजूद था, बाकी सब सामान भी मिल गया। पर दिक्कत पड़ी तो सम्पादक के सिलसिले में। अखबार का सम्पादक कौन हो ? बड़ी विकट समस्या उपस्थित थी। महान अमीर इस सम्बन्ध में किसी भी नतीजे पर न पहुंच सके। इसी चिंता में उन्होंने खाना पीना तक छोड़ दिया। महल में नृत्य गीत बंद कर दिया गया। महान अमीर को इस तरह चिन्तामग्न देखकर सेनापति ने फौज को आठों पहर तैय्यार रहने की आज्ञा दे दी। न मालूम आलीजाह क्या सोच रहे हैं, कब क्या हुक्म दे दें।

जनता में महान अमीर के इस रुख की खबर पहुंची तो सारे काबुल की दूकानें बन्द हो गईं। लोग घरों से बाहर नहीं निकलते थे। लोगों ने दरवाजे बंद कर व उनके सामने बड़े बड़े पत्थर रख कर घरों को किले की तरह बना लिया और बन्दूकें भर कर चौबीसों घंटे पहरे पर रहने लगे। बच्चों ने रोना तक बन्द कर दिया।

आखिर तीन दिन के बाद महान अमीर ने पानी मांगा। इसी काम के लिये तैनात एक दरबारी ने झट से सोने के गिलास में चांदी का तबक चढ़ाकर और उसे हीरों से जड़ी तश्तरी में रख कर उन्हें पानी पेश किया। पानी पीकर महान अमीर ने हुक्म दिया—"हुसैनअली को हाजिर करो।"

तुरन्त ही खुद सेनापति फौज की एक टुकड़ी लेकर हुसैनअली के घर पर पहुंचा। हुसैनअली ने भी और नागरिकों की तरह अपने घर की किला बन्दी कर रखी थी। ज्यों ही फौज की टुकड़ी उसके घर के सामने आकर खड़ी हुई, उसने देख लिया कि घरवालों की समझ में आ गया कि कुछ दाल में काला है। घर भर में कुहराम मच गया। साथ ही सब ने बन्दूकें भी तान लीं।

बाहर से सेनापति ने कड़ककर आवाज दी——"हुसैनअली हाजिर है ?"

सेनापति से हुसैनअली का व्यक्तिगत परिचय था। उसने पत्थरों के पीछे से ही पूछा—"क्या है कुलीदाद खां ?"

सेनापति ने इस के उत्तर में पहले तो तीन पंक्ति लम्बी महान अमीर की उपाधियां बताईं, फिर कहा—"वे तुम को याद कर रहे हैं।"

हुसैनअली ने समझा कोई गलती हो गई है, उसी का दंड देने के लिये ही महान अमीर ने उसे बुलवाया है। पहले तो उसने सोचा कि बंदूक उठाकर आत्महत्या कर लूं। फिर सोचा कि यदि ऐसा किया तो बाद में शायद घरवालों पर आफत आए; इस लिए उसने महान अमीर के सामने हाजिर होना ही ठीक समझा। उसने दरवाजे के आगे से एक एक करके पत्थर हटाये, फिर बाहर आकर शहीद जिस अदा से फांसी के तख्ते पर जाता है, उसी अदा से खड़ा हो गया।

उसका बाहर निकलना था कि सैनिकों ने लपककर उसे घोड़े पर उठा लिया और चील जिस प्रकार मांस के टुकड़े को लेकर भागती है, उसी प्रकार उसे से लेकर राजमहल की ओर भागे।

एक मिनट के अन्दर ही उसे हाथ पीछे बांधकर महान अमीर के सामने पेश कर दिया गया। उस समय महान अमीर के सामने दस्तरखान बिछा था, जिस पर तरह तरह के खाने सजे हुए थे। उसे देखकर उनका चेहरा खिल उठा और उन्होंने आदर के साथ उसे अपने साथ खाना

खाने के लिये बुलाया। इतना ही इशारा काफी था। फौरन उसके सारे बन्धन खोल दिए गये और वह महान अमीर की बगल में अदब से बैठ गया। महान अमीर ने सेनापति को सिर हिला कर जाने का संकेत किया और वह वहां से चला गया।

दोनों एक साथ खाना खाने लगे। महान अमीर ने कहा—"तुम मेरे साथ विदेशों में रहे हो, वहां तुम मेरे दुभाषिया भी थे। अब मेरी इच्छा है कि तुम एक अखबार निकालो।"

हुसैनअली की अब जान में जान आई। लेकिन सम्पादक बनना उसे जोखिम का काम लगा। उसे मालूम था कि मुल्लाओं द्वारा जनता में अखबार के सम्बन्ध में कैसी कैसी भ्रांतियां फैलाई गई हैं। उसने झिझकते हुए कहा—"यों तो मैं हूजूर का गुलाम हूं। पर मैं इस काम के लायक नहीं हूं।"

महान अमीर ने कहा—"यह काम तो तुम्हें करना ही होगा। मैं नहीं चाहता कि मेरा देश अंधकार में पड़ा रहे। अखबार निकलना ही चाहिये। हां, याद आया, विलायत में रहते समय तुमने अफगानिस्तान और इंगलेंड के आपसी सम्बन्ध को दृढ़ करने के विषय में एक लेख लिखा था, जो 'टाइम्स' में छपा था। तुम्हारा वह लेख मुझे बहुत पसन्द आया था।"

आखिर हुसैनअली को इच्छा न होते हुए भी अखबार का सम्पादक बनना स्वीकार करना पड़ा। पर उसने महान अमीर से कहा—"मेरे लिए आप दस बाड़ी गार्ड मुकर्रर कर दें, और मेरे घर पर फौजी पहरा बैठा दें, तभी मैं इस जोखिम को उठाऊंगा।"

बात की बात में पहरे वगैरह का सब प्रबन्ध हो गया। यों तो अखबार के सम्बन्ध में लोग तरह तरह की भ्रांतियां फैला रहे थे, तो भी सभी बड़ी उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पहला अंक छपा तो लोग भूखों की तरह उस पर टूटे। इसके बाद जितने अंक छपे, वे सब बिक गए। यहां तक कि उनमें चोर बाजारी चलने लगी। अखबार दुगनी,

तिगुनी, चौगुनी संख्या में छपने लगा। जनता के अन्दर जो विरोधी भावना पैदा की गई थी, थोड़े ही दिनों में वह दूर हो गई। अखबार के सम्पादक हुसैनअली को अब किसी भी खतरे का भय न रहा। उसकी रक्षा के लिए जो बाड़ी गार्ड और सैनिक पहरा था, वह अब उसने हटा दिया। इतने में यह घटना घटी।

एक दिन हुसैनअली संध्या समय एक निर्जन स्थान से गुजर रहा था कि एकाएक उसे यह अनुभव हुआ कि कोई ठंडी सी कड़ी सी चीज उसके सीने से लगी है। साथ ही किसी ने कहा—"खड़े हो जाओ!"

आज्ञा देने वाले के हाथ में बन्दूक थी जो उसने हुसैनअली के सीने पर गड़ा रखी थी। हुसैनअली भी अफगान था, पर उसके हाथों में बन्दूक नहीं थी; इसलिये वह कुछ डरा, बोला—"क्या है भाई?"

"भाई किसे कहते हो? मैं तो तुम्हें अपना दुश्मन समझता हूं। क्यों कि तुमने मेरा लेख नहीं छापा।" बन्दूक वाले व्यक्ति ने गर्ज कर कहा।

हुसैनअली वर्षों तक विदेशों में रहा था। उसको यह तो मालूम था कि भारत आदि देशों में लेख लौटाने पर लेखक सम्पादक के जानी दुश्मन बन जाते हैं, उस दिन से उसकी रचनाओं को या तो दो कौड़ी की बताने लगते हैं, या उन्हें विदेशी रचनाओं की चोरी बताते हैं। इत्यादि इत्यादि। पर यह तो...

हुसैनअली ने कहा—"मुझे नहीं याद आ रहा कौन सा लेख।"

उस व्यक्ति ने कहा—"हां, तुम्हें क्यों याद आएगा। मेरा लेख न छाप कर तुमने मेरी बेइज्जती की। आज उस बेइज्जती का बदला चुकाता हूं।"

यह कह कर उसने बन्दूक की नाली को और भी जोर से हुसैनअली की छाती पर गड़ा दिया और घोड़े पर हाथ रख दिया।

हुसैनअली जीवन से करीब करीब निराश हो चुका था। पर उसने बचने की अन्तिम चेष्टा की, कहा—"भाई, पहले मेरी सुन तो लो!

फिर मैं तो तुम्हारे कब्जे में ही हूं। कौन सा लेख था यह तो बताओ? शायद वह मेरे असिस्टेन्ट ने मुझे दिखाए बगैर ही लौटा दिया हो।"

इस पर वह आदमी कुछ पसीजा गया और उसने बन्दूक हटा कर जेब से एक पर्चा निकाल कर दिया और बोला—"यह है वह लेख। जब से वापस आया है, तब से खून का घूंट पीकर तुम्हारा पीछा कर रहा हूं कि कब मैं तुम्हें अकेला पाऊं और अपने सम्मान का बदला लूं।"

हुसैनअली ने वह पर्चा लेते हुए कहा—"यह तो जरूर छपेगा। मैं विश्वास दिलाता हूं कि जरूर छपेगा। अंधेरे में यह पढ़ा नहीं जाता इसका विषय क्या है?"

उस बन्दूकधारी लेखक ने अपनी दाढ़ी को खुजलाते हुए कहा—"विषय क्या है, स्फुट विचार हैं।"

हुसैनअली ने सोचा, क्या यह रोग यहां भी आ गया। लोग न तो कोई खबर भेजेंगे, न परिश्रमपूर्वक लिखा हुआ कोई लेख भेजेंगे, न कहानी भेजेंगे, न कविता ही भेजेंगे, बस स्फुट विचार भेजेंगे जिनमें न तो कोई ढंग की बात होती है और न कोई क्रम।

खैर, जान बचानी थी। पर्चा ले लिया। दोनों अपने अपने रास्ते पर चल दिये। जाते जाते वह व्यक्ति कहता गया—"याद रखना, अपने खानदान में मैं ही एकमात्र व्यक्ति हूं जो जीवित है। बाकी सब दो दो चार दुश्मनों को मार कर मर चुके हैं।"

अगले दिन सवेरे हुसैनअली ने महान अमीर से रात वाली घटना का जिक्र किया। सुनकर अमीर चिंतित हुए, बोले—"यहां के लोगों की न जाने यह जहालत कब दूर होगी। खैर, तुम अब इस घटना को बिल्कुल भूल जाओ।"

उसी दिन वह बन्दूक वाला व्यक्ति अज्ञात व्यक्तियों के हाथों मारा हुआ पाया गया। जब हुसैनअली ने यह समाचार पाया तो उसे बड़ा

दुःख हुआ। उसने तुरन्त महान अमीर से जाकर कहा—"क्या यह अच्छा हुआ?"

महान अमीर ने कहा—"मजबूरी थी। ऐसे लोग आधुनिकता में पल ही नहीं सकते। उनका मर जाना ही अच्छा है।"

हुसैनअली इस सम्बन्ध में तर्क क्या करता? वह चुप रहा। उस दिन से पत्रकार कला में उसका उत्साह कुछ कम हो गया। पर जनता को अखबार पढ़ने का चस्का लग चुका था और उसकी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होने लगी।

जब अखबार खूब चल निकला तो महान अमीर ने उसकी सफलता के उपलक्ष्य में सारे देशों के पत्रकार बुला कर एक बहुत बड़ा समारोह करने का निश्चय किया। तदनुसार देश विदेश के पत्रकारों को निमंत्रण पत्र भेज दिये गये और जोर शोर से तैयारियां होने लगीं। हुसैनअली को इस समारोह के प्रति कोई विशेष उत्साह नहीं था, तो भी वह अपना कर्त्तव्य समझ कर सब कुछ करता रहा।

उत्सव से ठीक एक दिन पहले की बात है। सारी तैयारियां पूरी हो चुकी थीं। दूर दूर के देशों से पत्र प्रतिनिधि समारोह में सम्मिलित होने के लिये राजधानी में पहुंच चुके थे। इतने में हुसैनअली बुरी तरह से घबराया हुआ महान अमीर के पास पहुंचा। महान अमीर ने उसकी घबराहट देखकर पूछा—"कहो, खैरियत तो है?"

"खैरियत क्या, मेरी स्त्री को कोई भगा कर ले गया।" उसका गला रुंधा हुआ था।

महान अमीर ने हंस कर कहा—"इसमें घबराने की क्या बात है? एक गई तो दो आ जायेंगी। अब की बार तुम्हारी शादी किसी राजघराने की लड़की से कर दी जायगी"

पर हुसैनअली को इन बातों से कोई तसल्ली नहीं हुई। उसे अपनी स्त्री बहुत प्यारी थी। वह उत्सव की बात भूलकर अपनी स्त्री की तलाश करने लगा।

यद्यपि विदेशी पत्रकारों से यह बात छिपाई गई थी, पर वे न मालूम कैसे सारी बात का पता पा गये। चूंकि वे लोग सबके सब पत्र प्रतिनिधि थे और यह समाचार बहुत दिलचस्प था, इस कारण उन्होंने सबसे पहला काम तो यह किया कि तार तथा अन्य साधनों द्वारा इस समाचार को अपने अपने पत्रों में छपने के लिए भेज दिया। कुछ नमक मिर्च भी लगा दिया। साथी पत्रकार जानकर भी कुछ रियायत नहीं की।

एक मुंहफट ने तो हुसैनअली से यह कहकर सहानुभूति प्रकट की—"खैर, हमारे देशों में यह तो नहीं होता कि लोग सम्पादक की बीबी को भगाकर ले जायें; लेकिन सम्पादक को सजा इससे भी सूक्ष्म तरीके से दी जाती है। उसे तो बदनाम किया ही जाता है, पर साथ साथ उसकी बीबी को भी बदनाम किया जाता है। यहां तक कि अब हमारे यहां यह एक सर्वमान्य सी बात हो गई है कि कोई भी सुन्दर स्त्री बदनामी से नहीं बच सकती। मिस्टर हुसैन, आप गम न करें।"

दूसरे दिन उत्सव आरम्भ होने से कुछ ही देर पहले महान अमीर की पुलिस ने हुसैनअली की स्त्री का पता लगा लिया। अब सभी विदेशी पत्रकार उत्सव की बात भूलकर इस बात के लिये लालायित हो उठे कि कैसे उस स्त्री के अपहरण की पूर्ण कहानी मालूम की जाय।

विदेशी पत्रकार इस जोड़ तोड़ में इतने व्यवस्त रहे कि वे जिस काम के लिये आये थे, वह गौण हो गया। आखिर ये पत्रकार किसी न किसी तरह अपहरण के बारे में एक एक कहानी पढ़ने में सफल हुए। प्रत्येक की कहानी अलग अलग थी। जो पत्रकार जितना अधिक कल्पनाशील था, उसकी कहानी उतनी ही रोचक बनी। ये पत्रकार समझ रहे थे कि हम अपहरण सम्बन्धी जिन खबरों को भेज रहे हैं, वे बिना रोक-टोक सीधी हमारे पत्रों को जा रही हैं; परन्तु महान अमीर उनकी भेजी हुई सभी खबरों को तार घर से मंगवा कर पढ़ रहे थे। वे इन समाचारों को पढ़ते और खूब हँसते; क्योंकि असली रहस्य का केवल उन्हीं को पता था।

जब अखबार का समारोह खत्म हो गया और बाहर से आये पत्रकार अपने अपने देशों को चले गये, तो महान अमीर ने हुसैनअली को बुलाकर पूछा—"तुम्हें तो अपनी स्त्री के भगाये जाने का रहस्य मालूम होगा ?"

"जी नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम।"

"तुम्हारी स्त्री ने तुम्हें कुछ नहीं बताया ?"

"नहीं, कुछ नहीं बताया।"

महान अमीर की आंखें चमक उठीं। उन्होंने कहा—"तुम्हारी पत्नी को मैं ने ही थोड़ी देर के लिये अपनी बहिन के यहां बुलवा लिया था।" फिर रुककर बोले—"ऐसा करने में मेरा उद्देश्य पत्रकार कला सीखना तथा तुम्हें सिखाना था।"

यह कहकर महान अमीर ने पास ही के एक बडे लिफाफेसे उन तमाम तारों तथा पत्रों को निकाला जो विदेशी पत्रकारों ने अपने अपने अखबारों को भेजे थे और हुसैनअली को पढ़ने के लिये दे दिये।

हुसैनअली ने एक एक करके तार और पत्र पढ़ने शुरू किये। उसकी पत्नी के भगाने के सम्बन्ध में ऐसे ऐसे अजीब अजीब ब्योरे दिये गये थे कि मानव बुद्धि भी चकरा जाये। एक ने यह लिखाथा—"हुसैनअली की स्त्री के भगाये जाने का यह सातवां मोका है और सात ही उसके अखबार के अंक निकले हैं। प्रत्येक अंक किसी नहीं किसी पाठक को पसन्द आता था; बस, वह अपना रोष प्रकट करने के लिये इस तरकीब से काम नहीं लेता था।"

एक अन्य पत्रकार ने लिखा था—"इस काम में अमीर का भी हाथ है। यों देखने में तो अमीर बड़े लोकतंत्रवादी हैं, पर अपनी कोई आलोचना सहन नहीं कर सकते। जहां दूसरे देशों में सरकारें 'आर्डिनेन्स' निकालकर पत्रों का दमन करती हैं, वहां अमीर ने इस पत्र के सम्पादक को राह पर लाने के लिये यह नई तरकीब ढंढ निकाली है।"

इसी प्रकार के विवरण और पत्रकारों ने भी भेजे थे। बेहद रोचक, परन्तु एकदम झूठ।

सारे पत्रों और तारों को पढ़कर हुसैनअली ने हाथ की हथेली पर अपना सिर रखते हुए कहा—"यदि यही पत्रकार कला है, तो इसे मेरा दूर से ही सलाम।"

महान अमीर ने सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं हमें पराजय नहीं स्वीकार करना है। हमें तो इस कला में और भी आगे बढ़ते जाना है और देश को आगे बढ़ाना है।"

बड़ी देर तक हुसैनअली और अमीर में इस विषय पर बहस हुई। हुसैनअली ने कहा—"यह ठीक है कि हमारे देश के लोग बात बात पर बन्दूक तान देते हैं, पर वे न तो इतने झूठे हैं, और न इतने मक्कार।"

फिर भी अमीर समझाते रहे। अंत में एक बात तय हो गई। अखबार के अगले अंक में यह समाचार प्रकाशित हुआ.........

'विदेशों से जो पत्रकार हमारे देश का निरीक्षण करने आये थे, वे हमारे अखबार के ऊंचे स्टैंडर्ड पर इतने मुग्ध हो गये कि उनमें से कई एक ने यहां स्थायी रूप से बस कर पत्रकार कला सीखने की इच्छा प्रकट की। पर महान अमीर की इस नीति के कारण कि देश में विदेशी अधिक समय तक न रहें, उनकी प्रार्थनायें स्वीकार नहीं की गई। इसमें उन्हें भारी निराशा हुई। विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि इन पत्रकारों में से कईयों ने आत्महत्या कर डाली है।'

इस समाचार से देश में अखबार का खूब प्रचार हुआ और देश जल्दी ही आधुनिक सभ्य और उन्नत देशों की पंक्ति में आ गया।

यंत्र का मूल्य

इस इलाके के रेलवे के नए डिविजनल ट्रैफिक सुपरिन्टेन्डेन्ट होकर जो साहब आए, वे देखने में पहिले के साहबों की तरह होने पर भी प्रकृति में उनसे बिल्कुल भिन्न निकले। मिस्टर सेठी अपने पूर्ववर्तियों की तरह केवल दफतर के वीर नहीं थे, बल्कि वे जब तब ऐसा काम कर बैठते थे कि उनके नीचे वालों को बड़ा आश्चर्य होता था, और वे कुछ चौकन्ने रहने लगे थे। जब तब वे फर्स्ट क्लास के किसी डिब्बे में बैठ कर निकल जाते थे, और यह परवाह नहीं करते थे कि उनका खास डब्बा लगे, तभी वे दौरे पर जायें। वे इस बात की भी परवाह नहीं करते थे कि अमुक जांच बहुत छोटी है, और उनके करने लायक नहीं है। वे ब्यौरे के आदमी थे, और उन्हें ब्यौरा पसंद था।

संक्षेप में उनके आने से सारे इलाके के रेल कर्मचारियों में एक अफरातफरी सी मच गई थी और भय सा पैदा हो गया था कि न मालूम क्या हो? घूस लेने वालों ने डर के मारे घूस लेना बंद कर दिया। सिगनलमैन अधिक मुस्तैद रहने लगे। टिकट चैकरों ने केवल अपनी

जेबों को भरने की नीयत से नहीं, बल्कि रेल कम्पनी की दृष्टि से टिकट चेक करना शुरू कर दिया। बिना टिकट चलने वालों ने इस रास्ते को ही छोड़ दिया। वे समझ गए कि अब इस तरफ दाल नहीं गलने की।

नये साहब अक्सर वर्कशाप में भी चले जाते थे, और वहां यह देखते थे कि किस प्रकार इंजन आदि की मरम्मत तथा रक्षा की जाती है। वे इस बात पर ज़ोर देते कि हर एक कलपुर्जा साफ़ तथा सक्रिय रखा जाय। ऐसे दौरों के समय मिस्टर सेठी कभी कभी छोटा मोटा भाषण भी देते थे। एक बार उन्होंने इसी प्रकार भाषण देते हुए कहा—"हमारा देश अभी अभी स्वतंत्र हुआ है। आज हमारे देश को जिस बात की सब से आधित जरूरत है, वह है मशीन। हमारी द्रुत उन्नति में यदि कोई बात बाधक है, तो वह है मशीनों की कमी। इस लिए मामूली क्लीनर से लेकर इंजन चलाने वाले तक सबका कर्तव्य यह है कि उनके हाथ में जो मशीन आवे, उससे इस प्रकार काम लें कि वह अधिक से अधिक दिनों तक चले। हमारे यहां आदमियों की कमी नहीं है, पर मशीनों की कमी है, इस लिए लोगों को चाहिए कि मशीनों को अपनी जान से भी प्यारी समझें।"

मिस्टर सेठी के ये नये विचार, जो नये यंत्र युग के उपयुक्त थे, सब लोगों में फैल गये। कुछ लोगों ने इसे मजबूरी से अपनाया और कुछ लोगोंने, जिनमें अभी आत्मा जाग्रत थी, जोश का सोता सूखा नहीं था, उन लोगों ने खुशी से अपनाया। पहले से गाड़ियां ठीक समय पर चलने लगीं, आकस्मिक घटनायें कम होने लगीं, इंजन पहले से अच्छी अवस्था में रहने लगे। जैसा एक नया ही युग आ गया हो!

मिस्टर सेठी यह सब जो कुछ करते थे, वह केवल दिखावे के लिए नहीं करते थे, बल्कि उनमें सचमुच यंत्र युग के विचारों का ज़ोर हो रहा था। जो पुराने रेल कर्मचारी थे, वे तो उनकी बातों को पसन्द नहीं करते थे, पर कुछ नौजवान कर्मचारियों ने उनके विचारों को सम्पूर्ण रूप से अपना लिया था।

ऐसे ही व्यक्तियों में ड्राइवर मदनलाल एक व्यक्ति था। अब तक वह पैसेंजर का ड्राइवर था, पर थोड़े दिनों से उसे मेल ड्राइवर का पद मिला था। अवश्य उसके ऊपर उसके साथ ही एक पुराना ड्राइवर फैजखां भी था, पर वह जल्दी ही रिटायर होने वाला था। इस कारण मदनलाल उसकी देख रेख में एक तरह से सब कार्य करता था। ड्राइवर होते हुये भी मदनलाल यह चेष्टा करता था कि दुनिया में जो कुछ हो रहा है, उससे बेखबर न रहे। पर ड्राइवर का काम ऐसा तो नहीं होता कि कोई किताब ली और इंजन में बैठे बैठे पढ़ने रहे। उसमें तो सावधान रहना पड़ता है जिससे आकस्मिक दुर्घटनायें कोई रोज नहीं होतीं। पर सभी समय सावधान रहना यह ड्राइवर का कर्तव्य है जिससे कि दुर्घटना हो ही न पावे, और अगर हो तो उसे जहां तक हो सके रोका जाय, तथा उसकी शक्ति को घटाया जाय।

फिर भी मदनलाल समय निकाल कर कुछ न कुछ पढ़ा करता था, और नेताओं के भाषणों को समझने तथा कार्यरूप में परिणत करने की चेष्टा करता था। इसी कारण सेठी साहब की बातें उसे बहुत पसन्द थीं।

एक दिन की बात है, मेल गाड़ी बड़े जोरों से चली जा रही थी। स्टेशन करीब ही था, पर अभी गति घटाई नहीं गई थी। एक तजुर्बेकार ड्राइवर के नाते फैजखां उस बिन्दु को जानता था, जहां से गाड़ी की गति घटानी चाहिए, जिससे कि गाड़ी आकर ठीक स्थान पर खड़ी हो। मदनलाल भी उस बिन्दु को जानता था; पर अभी वह बिन्दु नहीं आया था। ज्यों ज्यों स्टेशन करीब आने लगा, त्यों त्यों लाइन के पास लोग इधर उधर जाते हुए दृष्टिगोचर होने लगे। यद्यपि इस प्रकार से लाइनों में होकर चलना मना है, पर लोग चलते ही हैं। खासकर रेल में काम करने वाले तथा आसपास के क्वार्टरों के लोग ड्यूटी पर जाते हुए जल्दी में लाइन पार कर के जाया करते हैं। यह रोज की घटना है।

हमेशा की तरह मदनलाल ही सब कुछ कर रहा था और फैजखां खड़ा होकर एक बुजुर्ग की तरह देख रहा था। इतने में ऐसा मालूम हुआ कि

एक व्यक्ति उसी लाइन पर से जा रहा है, जिस पर गाड़ी चल रही है। अभी ऐसा मालूम हुआ कि गाड़ी उस पर जा ही पड़ेगी। पर इस बात की सम्भावना बहुत अधिक थी कि वह व्यक्ति लाइन पार कर जायेगा, क्योंकि केवल एक ही कदम लेना था—सिर्फ एक कदम। उसने कदम उठाया भी, पर यह क्या? अरे दुर्भाग्य! वह कदम उठा कर लाइन में ही रह गया, और उसका अगला कदम भी उठ गया, पर रेल की लाइन से बाहर जाने के ढंग पर नहीं उठा था। फैजखां तो जैसे पागल सा हो गया। उसने गाड़ी के सब ब्रेक लगाने चाहे। उसका हाथ सब तरफ एक साथ बढ़ा, पर मदनलाल ने केवल सारा स्टीम खोल दिया, अन्य ब्रेक नहीं लगाने दिये। एक क्षण के अन्दर मेलगाड़ी उस व्यक्ति पर जा पड़ी, और वह व्यक्ति सामने लगे हुए काउ-कैचर से इतने जोर से छिटक कर गिर पड़ा कि फौरन मर गया।

स्टेशन के इधर ही गाड़ी रुकी, और फैजखां के बयान पर मदनलाल गिरफतार कर लिया गया। पुलिस के दारोगा ने यह समझा कि मदनलाल पागल हो गया है, पर मदनलाल ने कुछ भी अस्वीकार नहीं किया। उसने यथा समय बयान देते हुए कहा, "परिस्थिति ऐसी थी कि शायद सब कुछ करने पर भी हम उस व्यक्ति को बचा न पाते, और दूसरी तरफ परिस्थिति यह थी कि यदि सारे ब्रेक लगाये जाते, तो इंजन शायद हमेशा के लिये बेकार हो जाता, यह अगर ठीक भी होता, तो वह मेल लायक तो हर्गिज न रहता। इस लिये मैं ने श्री फैजखां का हाथ रोक लिया और स्टीम खोलकर दुर्घटना को रोकने का उतना ही प्रयत्न किया, जितने से इंजन को कोई खतरा नहीं हो सकता था... ।"

जो व्यक्ति मारा गया था, वह मिस्टर सेठी का ही लड़का था। मिस्टर सेठी ने उस दिन से चारपाई पकड़ ली थी। उनकी बीमारी के कारण मुकदमे को दो तीन दिन स्थगित भी करना पड़ा, क्योंकि इसमें उनकी भी गवाही होनी थी। उन्होंने खुद ही कहा था कि वे गवाही देंगे, वर्ना दूसरे कर्मचारी भी उनकी जगह उपस्थित हो सकते थे।

अन्त में मिस्टर सेठी की गवाही हुई। उन्होंने कहा, "यह बिल्कुल ठीक बात है कि वह इंजिन इस दशा में नहीं था कि उसमें सब ब्रेक लगा दिये जायं, और वह फिर भी ठीक रहे। इसी लिए मेरी राय में मदनलाल ने जो कुछ भी किया, अपने कर्त्तव्य को अदा करने के लिए किया। यह एक दुःखद बात है कि हमारी प्रगति में यन्त्र का मूल्य मनुष्य से कहीं अधिक है... ।"

इस गवाही के कारण जज बहुत असमंजस में पड़ गया। पर उसमें यन्त्र युग की नयी वाणी अभी पहुंच न पाई थी। उसके निकट मनुष्य के जीवन का मूल्य सबसे अधिक था। उसने मदनलाल को कानून के अनुसार दो साल की सख्त सजा दी।

सेठी साहब इसके विरुद्ध अपील दायर कर रहे हैं। पुत्र खोकर भी उन्होंने अपने विचार नहीं छोड़े। लोग कहते हैं वे पागल हैं, पर पता नहीं पागल कौन है।

तीसरी बीवी

रामलड़ैते बाबू अपनी दूसरी बीवी को लेकर बहुत परेशान रहे। मुहल्लेके सभी लोग जानते थे कि उनकी बीवी के साथ घनश्याम बादशाह का ताल्लुक है। यहां तक कि रामलड़ैते बाबू भी इसको जानते थे। उन्होंने उसे रंगे हाथों पकड़ने के लिए बड़ी-बड़ी तरकीबें कीं, पर ऐन मौके पर वह बराबर हाथ से निकल गया। कई बार ऐसा मालूम हुआ कि अब की बार वह बचकर नहीं जा सकता, पर न मालूम घनश्याम को क्या तरकीब याद थी कि छू मन्तर हो जाता था।

रामलड़ैते बाबू कामकाजी आदमी थे। यह तो हो नहीं सकता था कि दिन भर घर बैठे रहें। स्कूल में मास्टरी करते थे, इसके अलावा दो एक ट्यूशन भी कर लेते थे। बात यह है कि रोटी दाल तो चलनी ही चाहिए। जिस समय उनकी पहली बीवी जीवित थी, उस समय वे अपने मकान के नीचे के हिस्से को किराये पर उठाते थे। उससे आठ दस रुपये आ जाते थे। रामलड़ैते बाबू के लिए आठ दस रुपये कम

नहीं थे, पर जब उन्होंने दूसरी शादी की तो उन्होंने इसका भी मोह त्याग दिया। न मालूम इन्हीं किरायेदारों में कोई मिल जाय, और आफत हो। वे दुनिया पर विश्वास नहीं रखते थे। चाणक्य ने यह जो कहा है कि स्त्री और राजकुल में विश्वास नहीं करना चाहिये, इसमें उन्होंने इतना संशोधन और कर लिया था कि स्त्री के विषय में किसी को एतबार नहीं करना चाहिए। वे प्रत्येक बात को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। वे समझते थे कि विश्वास किया कि डूब गये। इस कारण वे जब स्कूल में जाते तो बाहर से मकान में एक बहुत बड़ा पंजाबी ताला लगा देते थे, जैसा उधर पुराने ढंग के दूकानदार अक्सर लगाते हैं।

फिर भी इससे बचत नहीं होती थी? ताला ज्यों का त्यों रहता था, दीवार में कहीं सेंध नहीं होती थी, फिर भी घनश्याम पहुंच ही जाता था। इस घनश्याम से रामलड़ैते बाबू वाकई बहुत परेशान थे। इसे वे एक राहु या केतु के रूप में समझते थे, जो मौका पाकर उनकी चन्द्ररूपी सहधर्मिणी को आकर ग्रस जाता था।

अब हम घनश्याम बादशाह का भी कुछ परिचय दें। इकहरा बदन, लम्बाई पांच फीट आठ इन्च, रंग गंडुमी, आंख के नीचे मोटी कारिख, आंखें बड़ी-बड़ी, इतनी बड़ी कि निकली आ रही थीं। घनश्याम के चौदह पुरखों में कोई भी बादशाह, राजा यहां तक कि रायसाहब भी नहीं था, फिर भी मित्रों ने जो देखा कि अवारगी में नंबर मार ले गये हैं तो नाम के साथ बादशाह जोड़ दिया। इस प्रकार यह बादशाह शब्द घनश्याम की डिग्री की तरह था। गांजा और चरस पीने में घनश्याम ने संसार त्यागी साधुओं को भी हरा दिया था। सब तरह की दुष्टता तथा बदमाशी में उसके बराबर यहां तक कि शिष्य होने के उपयुक्त इस इलाके में कोई नहीं था। लोग चिन्तित थे कि इसके मरने के बाद उसकी जगह बादशाह कौन होगा? अस्तु।

रामलड़ैते बाबू बिलकुल ही दूसरी किस्म के व्यक्ति थे। उनका

पेशा था लड़कों को पढ़ाना, इस लिए उनको भद्र श्रेणी में ही समझना चाहिए। उनसे पढ़नेवाले लड़के कहा करते थे कि एक नंबर काइयां हैं, पर कुछ भी हो घनश्याम के आगे कुछ नहीं चलता था। जब अपनी स्त्री ही—तो फिर क्या किया जाय।

जब उनकी दूसरी बीबी तीन दिन के बुखार में ही चल बसी, तो उन्होंने मन ही मन भविष्य के लिये एक कार्यक्रम तैयार कर लिया। उन्होंने इस बात की परवाह नहीं की कि लोग यह काना फूसी कर रहे थे कि इस स्त्री के मारने में उनका कुछ हाथ है। बस उन्होंने उस दिन से अपनी शादी की तैयारी शुरु कर दी। घनश्याम के साथ ताल्लुक के कारण उन्हें अपनी स्त्री से कोई प्रेम नहीं था।

हमारे देश में और कुछ हो या न हो, कन्याओं का अभाव नहीं है। इस लिए एक दिन रामलड़ैते बाबू अकेले गये और फिर दो दिन बाद दुकेले लौट आये। तीसरी शादी थी, इस लिए किसी विशेष धूम धड़ाके की आवश्यकता नहीं थी, और न गुंजाइश।

ज्योंही रामलड़ैते बाबू तीसरी शादी करके लौट आये, त्योंही घनश्याम बादशाह और उसकी मित्र मंडली में जिसे वे लंगचू पेंगचू सोसाइटी कहते थे खलबली मच गई। उनमें यह खलबली मची कि वह लड़की कैसी है, कहां की है इत्यादि ब्योरा पता लगाया जाय। जब इन लोगोंने पता लगा लिया कि रामलड़ैते बाबू की तीसरी बीबी की उम्र सोलाह है, गोरी है, कुछ नाटी पर मोटी है, तभी इन लोगों ने शान्ति की सांस ली। इन लोगों ने इस स्त्री का नाम का पता नहीं लगाया, क्यों कि वे इस मत के थे कि नाम से क्या आता जाता है? वे तो रुप के ऊपर जान देनेवाले थे।

तरह तरह की योजनाए बनीं कि कैसे काम हासिल होगा। घनश्याम भी तो बड़ा हंसमुख व्यक्ति था पर जब से उसको यह खबर लगी थी, तब से वह गम्भीर हो गया था, किसी से हां या ना के अलावा कुछ कहता नहीं था। मित्रों में जो बातचीत हुई, उसने उन सबको सुना पर कुछ कहा

नहीं। वह मुंह में एक कैंची सिगरेट दबाकर पीता ही गया, पीता ही गया। मालूम तो ऐसा होता था कि उसकी अक्ल काम नहीं दे रही थी।

२

अभी शादी करके तीन दिन भी नहीं बीते थे कि सवेरे ही सवेरे रामलड़ैते बाबू चिन्तित मुद्रा से महाकाली औषधालय में पहुंचे। महाकाली औषधालय के संस्थापक बजरंगबली इंट्रेन्स में फेल होकर दो साल से अपने मामा ज्ञानदास वैद्य के यहां दवा बांटता तथा काढ़ा बनाया करता था। अभी हाल में मामा से अलग होकर उसने यह दवाखाना खोला था।

रोग बढ़ते जाते थे, उसी अनुपात से चिकित्सक भी बढ़ते जाते थे, इसमें आश्चर्य की क्या बात है। रोग जितने खराब होते जाते थे, चिकित्सक भी शायद इसी कारण उतने खराब होते जाते थे। जो कुछ भी हो एक साइनबोर्ड लगाकर यह महाकाली औषधालय खुल गया था, इसमें कोई संदेह की बात नहीं थी। कोई भी शरीफ आदमी इस औषधालय का चौखट नहीं नांघता था, क्योंकि उनका यह कहना था कि वहीं जाकर बजरंगबली से इलाज करवायें, जिसका महाकाली के अतिरिक्त कोई मददगार न रह गया हो।

लोग यह कहते थे कि बजरंगबली को कुछ भी नहीं आता था और उसके लिए पेचिश, बुखार, हैजा सब बराबर था। कुछ भी हो इस औषधालय में अक्सर संध्या समय लेंगचू पेंगचू सोसाइटी का अधिवेशन होता था। बजरंगबली मकड़ी की तरह जाल फैलाकर बैठा रहता था, कहीं एक आध आफत का मारा देहाती फंस भी जाता था। शुरू शुरू में यही बहुत था।

रामलड़ैते बाबू को अपने औषधालय में घुसते हुए देखकर बजरंगबली

को बहुत आश्चर्य हुआ, पर अपने आश्चर्य को छिपाते हुए और यह दिखाते हुए कि न मालूम ऐसे रोगी यहां कितने आते रहते हैं उसने हाथ के पास की एक कापी में कुछ लिखना शुरू किया। लिखते लिखते सिर्फ इतना ही बोले—"आइए, अबे कहां गया कुर्सी बढ़ा दे, मैं अभी आपसे बात करता हूं"—कहकर वह फिर लिखने लगा।

दो मिनट के अन्दर लिखना बन्द करते हुए उसने रामलड़ैते बाबू से हँसकर कहा—"क्या अतिसार की कुछ गोलियां दें? बहुत अच्छी चीज है। एक हफ्ता तक इस्तेमाल कीजिए तो फौरन इसका असर मालूम देगा। यह बाजार में बिकनेवाला भंग का गोला या पीसा हुआ आंवला नहीं है। इसमें कस्तूरी, स्वर्ण भस्म, वंशलोचन, रसकपूर, शिलाजीत इत्यादि कोई अड़तीस तरह की अच्छी से अच्छी जड़ी बूटी, भस्म, जड़ें इत्यादि हैं। बहुत सी जड़ी बूटी तो ऐसी हैं कि सिर्फ हिमालय के उस हिस्से में पैदा होती हैं जहां बारहों महीने बर्फ गिरती है, कुछ चीजें तो ऐसी हैं जो भूमध्य रेखा के पास के देशों में पैदा होती हैं। इन्हीं सब चीजों को मिलाकर वैद्यगुरु अश्विनी कुमार ने इस परम अद्भुत अतिसार की सृष्टि की है जिसे खाकर अस्सी वर्ष का बूढ़ा भी तीन शादी कर सकता है।"

रामलड़ैते बाबू व्याख्यान से प्रभावित नहीं हुए देखकर बजरंगबली ने यह समझा कि कुछ तारीफ में कमी रह गई। इस लिए उसने खांसते हुए कहा—"नवीन विश्लेषण पद्धति से विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होगा कि इस औषध में वोइटामीन ए, बी, सी, डी, ई, एफ सभी मौजूद हैं। काड मछली का तेल तो इसकी तुलना में कुछ भी नहीं है। गठिया, कब्ज, पुरुषत्व की कमी सब रोगों में यह काम देता है। कभी बेकार नहीं साबित हुआ"...कहकर उसने दाम बताते हुए कहा—"आपकी तरह शरीफ आदमी के लिए यह आदर्श औषध है, खाने में अच्छा है, दाम भी कम, एक हफ्ते के लायक एक रुपये में। दूं?"

रामलड़ैते बाबू कुछ नहीं बोले, उन्होंने आंख से नौकर की तरफ इशारा किया, यानी नौकर जाय तब वे कह सकते हैं। बजरंगबली इशारे को समझते हुए बोले—"अबे यहां से जा।"

जब नौकर चला गया तब रामलड़ैते बाबू ने कहा—"बहुत ही शर्म की बात है, कहते नहीं बनता"—कहकर सिर नीचा कर लिया।

"कहिए, कहिए, मैं वैद्य हूं मुझसे क्या छिपाना? रोग को कभी छिपाना नहीं चाहिए। बवासीन है न? सो इस उम्र में सौ में अस्सी को होती है। इसमें लज्जा की क्या बात है। मेरे पास इसकी भी अचूक दवा है.... अर्शबजरेशरी, और मरहम भी दूंगा, एक हफ्ते में आराम। दूसरे से तो दो रुपये लेता हूं, आपसे पड़ोसी के नाते एक ही रुपया लूंगा।"

रामलड़ैते बाबू रुआसे होकर बोले—"रोग मुझे थोड़े ही है, मेरी स्त्री को है।"

"आपकी स्त्री को?"

"हां मेरी स्त्री को। बुढ़ापे में मुझे भी बुढ़भस हो गया, गृहस्थी के कारण शादी की, सो अब देख रहा हूं कि स्त्री को पुरानी गर्मी की बीमारी है।"

"क्या कहा? गर्मी? आपकी स्त्री को गर्मी? अभी तो उस दिन ब्याह कर लाये।"

"हां गर्मी। आधुनिका है न? सभी तो आप जानते हैं, फिर आपको क्या कहूं। पर हां एक बात, कृपया किसी से कहिएगा मत।"

"राम राम, ऐसा करता तो फिर यहां कोई रोगी ही नहीं ठहरता। देखिये न डिप्टी रामवारी बाबू को बहुत बुरी बवासीन है, मेरा इलाज हो रहा है, पर लग तो जाय किसी को कानोंकान खबर"—कहकर वह अकस्मात् रुक गया। उसे ऐसा सन्देह हुआ कि रामलड़ैते बाबू बहुत मुंह दबाकर जरा से हंसे, वह कहता गया—"आपको कहा सो बात और

है। गर्मी बहुत कठिन रोग है, पर समझे न, जैसा सांप उसका वैसा ही मंत्र मेरे पास है। असाध्य कुछ नहीं है। हां, कुछ दिन इलाज करना पड़ेगा।"

बजरंगबली ने लक्षण पूछकर एक खाने की और एक लगाने की दवा दी। रामलड़ैते बाबू ने दो रुपये देकर दवा ले ली, और फिर जाते समय एक बार अनुरोध कर गये कि किसी को रोग का पता न लगे। इसके बाद उन्हें जो पहली नाली मिली, उसी में दवा डाल दी और चले गये।

२

संध्या समय बजरंगबली और घनश्याम बादशाह में बातचीत हो रही थी। घनश्याम कह रहे थे—"तुम्हारी कसम सच कहना आज वह यहां आया था ?"

"हां, उसकी स्त्री को बहुत बुरी गर्मी है।दो रुपये की दवा ले गया।"

"क्या कहा ? गर्मी ?"

"हां बहुत भयंकर गर्मी। मैंने पारदाम्ल दिया। शायद दो तीन साल में अच्छा हो।"

"दो तीन साल में ?" फिर कुछ सोचकर बोला—"अच्छा नहीं क्या भाड़ होगा"—कहकर वहां से चला गया।

संध्या तक सारा मुहल्ला जान गया कि रामलड़ैते बाबू की नई बीबी को गर्मी की बीमारी है।

घनश्याम बादशाह ने उस दिन से उधर आंख भी नहीं डाली। वह एक तजर्बेकार लम्पट की तरह गर्मीसे बाघ की तरह डरता था।

३

चार साल बाद रामलड़ैते बाबू की स्त्री का देहान्त हुआ। फिर एक

दफे लेंगचू पेंगचू सोसाइटी में खलबली मच गई। यद्यपि उसके सदस्य पहले की तरह साहसी नहीं रह गये थे। एक दिन रामलड़ैते बाबू महाकाली औषधालय में पहुंचे और अब तक जितनी दवा खरीदी थी सब लौटा दी। बोले—"लीजिए आपके काम आयेगी, सिर्फ पहली बार जो दवा दी थी, वह इसमें नहीं है।

"क्या इन्हें इस्तेमाल नहीं किया ?" बजरंग वैद्य ने आश्चर्य के साथ कहा।

"नहीं, किसी को गर्मी होती तब न इस्तेमाल करते।"

"क्यों आपकी स्त्री को ?"

"नहीं वह बहुत अच्छी, उसमें कोई रोग नहीं था, मैंने तो प्रचार कर दिया था" कहकर वे खांसे कि हंसे, कुछ पता नहीं लगा।

"ओह"...बजरंग अवाक् रह गया।

रामलड़ैते बाबू हंसते हंसते चले गये।

४

संध्या समय जब घनश्याम को सारी बातें मालूम हुईं, तो बोले— "ओह, साला बड़ा धोखेबाज था, अच्छा चौथी शादी करे तो साले को बताऊंगा। मेरा नाम घनश्याम बादशाह है।"

रामलड़ैते बाबू को इच्छा तो थी कि चौथी शादी करें, पर केवल घनश्याम को छकाने के लिए वे इसके बाद ब्रम्हचारी हो गये।

वाइसराय का मैडल

सर्किल इंस्पेक्टर बन्दे अली खां और दारोगा सुलतानसिंह घोड़े पर अपने इलाके का दौरा करने निकले थे। दोनों घूसखोर थे, इस लिए मौसेरे भाई थे, बल्कि यों कहिये कि बाप बेटे थे। इंस्पेक्टर थानेदार की मदद के बगैर खा नहीं सकता और इन्स्पेक्टर चश्मपोशी न करे तो थानेदार बंध जाय।

दोनों के दौरे में साथ में एक पूरा काफिला चल रहा था। तम्बू, लश्कर और क्या क्या। चलते चलते वे एक अच्छे गांव के सामने पहुंचे। बन्दे अली खां इस गांव के नाम से अच्छी तरह परिचित था। बात यह है कि वह यहां पहले दो साल तक दारोगा रह चुका था और खूब रह चुका था; पर इस बात को स्वीकार करने से उसकी इज्जत में बट्टा लगता था। जो ऊंचे ओहदे पर पहुंच जाता है, वह यह दिखलाने की कोशिश करता है कि वह बचपन से ही इस ओहदे पर है। बन्दे अली दिखलाना चाहता था कि वह मां के पेट से ही इन्स्पेक्टर होकर आया है। इस लिए

गांव के सामने घोड़े पर से उतरते हुए सुलतानसिंह ने पूछा—"अमां, इस गांव का नाम क्या है ?"

थानेदार दिखाना चहता था कि इन छोटी बातों को याद रखना उसके वश की बात नहीं। परन्तु पुलिस कप्तान जब दौरे पर चलते तो वह दूसरी तरह से पेश आता। दिखाता कि एक एक ब्योरा उसे मालूम है, नहीं तो वे शायद लिख जाते कि दारोगा सुलतानसिंह दिन भर सोता रहता है, थानेदारी के लायक नहीं है। इस लिए दारोगा ने एक सिपाही की शरण ली, पूछा कि गांव का क्या नाम है ?

अन्त में वह बात मालूम हो गयी जो सबको अच्छी तरह मालूम थी। यह मालूम हुआ कि इस गांव का नाम नबादा है।

बन्दे अली खां ने एक गहरी सांस ली। उसे यह बात याद आयी कि उसके जमाने में इस गांव से बड़ी आमदनी रहती थी। यह आज से पन्द्रह वर्ष पहले की बात है। तब से जमाना बहुत बदल गया है। वह मन ही मन बहुत असन्तुष्ट हुआ, तय कर लिया कि सुलतानसिंह से यह बात छेड़ेगा।

पहले से ही खबर थी, इस लिए गांव का मुखिया, पटवारी, चौकीदार सब हाथ बांधकर खड़े हो गये। सब तरह का बन्दोबस्त तैयार था सब लोग सलाम बजाकर चले गये तो बन्दे अली ने फर्शी के जल का एक कश लेते हुए सुलतानसिंह से कहा—"यह गांव तो मजे का अच्छा मालूम हो रहा है—।"

बन्दे अली की बातों की ढाल किस ओर है, समझते हुए मन ही मन जरा अप्रसन्न होकर थूक निगलते हुए सुलतानसिंह ने कहा- "हां, यह तो है ही।"

एक लम्बी कश खींचते हुए धुएं को नाक से निकालते हुए बन्दे अली ने कहा—"फिर भी इस गांव से कोई ढंग का मुकदमा नहीं मिलता, यह बहुत ताज्जुब की बात है !"

ढंग के मुकद्दमे से क्या मुराद है, इसे दोनों समझते थे।

स्वयं सुलतानसिंह भी इस बात से खुश नहीं था। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि इस गांव के आठ सौ रहने वालों ने षड्यंत्र कर उसे उसकी वाजिब आमदनी से वंचित किया है, इस गांव की बढ़ती देखकर उसके दिल पर और भी सांप लौटता था। उसने दुखी लहजे में कहा—"कोई मुकदमा नहीं मिलता तो क्या किया जाय?"

कुछ सोचकर माथे पर बल लाते हुए, मानो उसने बड़े कष्ट से किसी बात का आविष्कार किया हो, बन्दे अली ने कहा—"यह सब साले चौकीदार की बदमाशी है।"

इस लिए चौकीदार की पुकार हुई। सुलतानसिंह मन ही मन खीझ गया। उसने सोचा कि बन्दे अली इस तरह तसदीक करना चाहता है कि इस गांव में सचमुच कोई मुकदमा नहीं होता या सुलतानसिंह उन्हें ले देकर बीच में ही दबा लेता है।

चौकीदार शिवबालक पास ही कहीं पर हाथ की बूनी लाल पगड़ी बांधकर धोती और चौकीदारी का काला कोट पहन कर हाथ में पीतल की मूठदार लाठी लेकर उपस्थित था। उसने घबराकर आंखें बंद कर सर्किल इन्स्पेक्टर को अनाड़ी ढंग से सलाम किया और खड़ा होकर हुक्म की प्रतीक्षा करने लगा। गत बाईस साल से वह चौकीदार था।

बन्दे अली ने चौकीदार की ओर देखते हुए कहा, "क्यों बे, तू इस गांव का चौकीदार है?"

"हां हुजूर, सब आप लोगों की मेहरबानी है!"

"मेहरबानी की ऐसी की तैसी। तुझे सरकार ने क्यों चौकीदार बनाया है? इस लिए तो नहीं कि खाये, पिये और पड़ा पड़ा सोता रहे? नमक हराम साले!" बन्देअली ने ऐसी मुंह और नाक सिकोड़ी मानों चौकीदार उसी का नमक खाता है।

"नहीं, हुजूर——"

"चुप, हुजूर के बच्चे! तू अगर नहीं सोता तो इस गांव से कोई मुकदमा क्यों नहीं आता?"

चौकीदार ने गिड़गिड़ाते हुए कहा- "हुजूर, कोई झगड़ा बखेड़ा होता ही नहीं तो मुकदमा कहां से हो?"

"झगड़ा बखेड़ा नहीं होता? साले बदमाश, इस गांव में सतयुग है, जो झगड़े नहीं होते? तू जरूर घूस लेकर सब मुकदमे दाब देता है। मैं तुझे जानता हूं।"

"नहीं, हुजूर!"

बन्देअली ने कुछ देर तक और गाली गुफता किया, पर जब इससे कुछ काम नहीं बना तब उसने दारोगा की ओर मुंह करके कहा—"क्या इस गांव में कांग्रेसियों का जोर है?"

"सुनने में तो नहीं आया, पूछ लीजिये।" सुलतानसिंह बन्देअली से डरता नहीं था, वह भी जल्दी ही सर्किल इन्स्पेक्टर होने वाला था।

बन्दे अली ने चौकीदार से पूछा, कि चौकीदार ने सिर हिलाते हुए कहा—"यहां कांग्रेस का जोर नहीं है।"

बन्दे अली ने देखा कि यहां कुछ नहीं हासिल हुआ, इस कारण तैश में आकर कहा—"जोर नहीं है? जरूर है। मुझे खबर लगी है कि यहां के चौकीदार, पटवारी, पट्टीदार सभी कांग्रेस की बात पर उठते बैठते हैं। कल सबेरे एक तरफ से सबको ११० में लाद दूंगा। क्या तुम लोगों ने सरकार से लड़ना दिल्लगी समझ लिया है? अभी जा, आराम में खलल मत डाल।"

बड़े दारोगा ने समझ लिया इतनी डांट काफी है, कल सबेरे कुछ नतीजा निकलेगा। चौकीदार के चले जाने पर बन्दे अली ने अर्थपूर्ण दृष्टि से सुलतानसिंह की तरफ देखा, मानो कह रहा था—"ऐसे हाकिमी की जाती है।"

बड़े दारोगा के लिए अलग खाना पक रहा था और छोटे दारोगा

के लिए अलग। छोटा दारोगा टहलने के लिए गया। फिर खा पीकर एक पेग चढ़ा कर सोने के लिए तैयार हुआ। चौकीदार को सामने पाकर बोला—"क्यों बे, मेरे सोने के सब ढंग हो गये ?"

"हां, हुजूर, बिस्तरा बिछा तैयार है।"

दारोगा थोड़ी देर चुप रहा, मानो सोच रहा है। फिर बोला—"और, तो यह देख रहा हूं, पर क्या मैं अकेला ही सोऊं ?"

चौकीदार उसकी बातों का निगूढ़ अर्थ नहीं समझ पाया। बोला—"नहीं हुजूर, अकेले क्यों ? मैं किवाड़े के पास लाठी लेकर जागता रहूंगा। फिर लालटेन जलेगी ? मजाल क्या कि कोई फटके—"

सुलतानसिंह पर शराब का धीरे धीरे नशा चढ़ रहा था। बोला—"तू लाठी लेकर खड़ा रहेगा तो मेरे तो पितर तर जायेंगे ! अजीब उजबक है ! कुछ बात नहीं समझता है। कहता हूँ, गांव में कोई बढ़िया छोकरी नहीं है ?"

"ना हुजूर इस गांव में कोई पतुरिया नहीं है।"

"पतुरिया नहीं है ? ऐसे ही सारी दुनिया का काम चल रहा है ? क्यों बे और यह सच हो कि यहां कोई तवायफ नहीं है तो मैं सच कहूंगा कि इस गांव की सभी औरतें पेशा करती हैं। फिर अगर तवायफ नहीं है तो दूसरी औरतें तो हैं।"

शिवबालक ने एक अस्फुट शब्द किया, कुछ कहा नहीं।

सुलतानसिंह ने उस पर एक घृणा भरी दृष्टि डाली और निकल गया। शिवबालक दंग रह गया कि रात में बिस्तर छोड़ कर, तम्बू छोड़ कर यह जा कहां रहा है ? नशे में है, फिर भी इसका कुछ भला-बुरा हो जाय तो जिम्मेदारी उस पर आयेगी। इस लिए उसने एक प्रभुभक्त नमक हलाल चौकीदार की तरह यह तय किया कि दूर रह कर उसका अनुसरण करेगा।

दारोगाजी तम्बू से निकल कर उधर चले जिधर उन्होंने शाम को

टहलते समय एक सुन्दरी को देखा था। जब से उस सुन्दरी को देखा था तब से उसका जी मचल रहा था। दारोगा ने सोचा कि उसी तरफ आ रहा है, जिधर वह सुन्दरी मिली थी पर वह उल्टी तरफ जा रहा था।

गांव के सिरे पर पहुंच कर सुल्तानसिंह समझ गया कि वह जहां आना चाहता है वहां नहीं जा रहा है। कुछ गलती हो गयी है। उसने देखा कि एक मकान का दरवाजा खुला है और भीतर रोशनी है। कौतूहलवश वह दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया और शून्य दृष्टि से भीतर घूरने लगा।

बड़ी देर तक आंगन में कोई दिखाई नहीं पड़ा। फिर उसने देखा कि कोई आया है। सुलतानसिंह ने देखा कि एक नवयुवती है। मोटी ताजी, रंग की काली, उम्र, करीब पन्द्रह सोलह की होगी।

दारोगा जी ने आड़ से आंखें फाड़ कर नवयुवती को देखा। वह एक कुप्पी को मिट्टी पर रख कर एक बर्तन मांजने लगी। उसकी सारी देह लता बर्तन मांज ने के कारण हिलोरें लेने लगीं। सुलतानसिंह देखता रहा और उसका मन उदास हो गया। वह भी खड़ा खड़ा उस नवयुवती के अंग संचालन के साथ साथ ताल दे कर झूमने लगा और उसमें साहस की वृद्धि होने लगी।

अकस्मात् वह मकान में घुस पड़ा। नवयुवती का बर्तन मांजना उस समय खतम हो चुका था। वह जूते को यथास्थान रखकर बर्तन धो रही थी। सामने ही एक अपरिचित व्यक्ति को आया हुआ देख कर उसने चौंक कर कहा—"कौन?"

सुलतानसिंह पुराना घाघ था। वह घबड़ानेवाला जीव नहीं था। इसके अतिरिक्त उसने समझ लिया कि मकान में कोई पुरुष नहीं है। बोला—"मैं।"

कड़ाई का धोना खतम कर नवयुवतीने कहा—"तुम जो भी हो, चौकीदार अभी घर पर नहीं है......।"

"चौकीदार ?" अवाक् होकर सुलतानसिंह ने कहा।

"हां, यह चौकीदार का घर है। तुम बता जाओ तुम्हारा क्या काम है, आने पर भेज दूंगी," कह कर युवतीने कुप्पी की ओर हाथ बढ़ाया।

"मैं तो किसी को नहीं चाहता। तुम उसकी कौन हो ?"

अपरिचित की बातें युवतीको पसन्द नहीं आई। उसने कुप्पी को उठाकर फिर मिट्टी पर रखते हुए कहा—"मैं उनकी भानजी हूं।"

"ओ !" फिर कुछ सोचकर दारोगाने कहा,—"मुझे तो तुमसे काम है।"

उसने समझा कि मामला कुछ गोलमाल है। घबराकर बोली—"मुझसे काम ?"

"हां तुमसे ! आज मैं तुम्हें अपनी रानी बनाऊंगा।" उसने बढ़कर तेजी के साथ अभ्यस्त हाथों से नवयुवती का एक हाथ पकड़ लिया।

अपरिचित के मुह से एक तीव्र तथा उत्कट बू आ रही थी।

एक तीसरा आदमी अकस्मात् इन दोनों के बीच में बाघ की तरह कूद पड़ा, बोला—"लड़की का हाथ छोड़ दो।"

दारोगाने देखा, सामने शिवबालक खड़ा है। उसके बिलकुल काले चेहरे में दो आंखें जल रही थीं। उसके हाथ में वही कभी न बिछुड़ने वाली पीतल की मूठ वाली लाठी थी। एक मुहूर्त के लिए सुलतानसिंह डर गया। पर उसने लड़की का हाथ नहीं छोड़ा। उसने नितान्त निर्लज्जता के साथ चौकीदार को धमकाया—"तुम ड्यूटी छोड़ कर यहां कैसे ?"

अत्यधिक जिद के साथ शिवबालक ने कहा—"हाथ छोड़ दो, नहीं तो अच्छा न होगा।"

दारोगा ने क्रोध में कहा—"क्यों, हाथ क्यों छोड़ूं ?"

"वह मेरी भानजी है। यहां कुछ दिनों से है। वह मेरी लड़की की

तरह है। उसे कुछ भला बुरा हो गया, तो मैं इसका जिम्मेदार माना जाऊंगा।"

"हां हां, लड़की की तरह है, पर तेरी बीबी तो नहीं न है? तुझे इतना सिरदर्द काहे को है? तेरे दामाद से मैं किस बात में कम हूं?"

"कम और बेसी की बात नहीं। तुम मेरे दामाद नहीं हो," बूढ़ा शिवबालक थर थर कांप रहा था। बोला—"हाथ छोड़ दो कहता हूं...।"

"हाथ नहीं छोडूंगा।

"हाथ नहीं छोड़ोगे?"

"नहीं छोडूंगा।"

"नहीं छोड़ोगे?"

"नहीं छोडूंगा, नहीं छोडूंगा, नहीं छोडूंगा।"

बात खतम हो पाई थी कि शिवबालक ने लाठी को घुमाकर पीतल वाले गुल्ले को भरपूर जोर से दारोगा के सिर पर दे मारा। दारोगा के मुंह से आवाज भी नहीं निकली। वह वहीं पर ढेर हो गया। कुप्पी मानो उसके गिरने के डर से बुझ गई। चारों तरफ खून ही खून हो गया। लड़की डर के मारे कई एक हाथ पीछे हट गई।

शिवबालक समझ गया, कि उसने क्या किया है? वह मकान से निकल कर इस बात की टोह लेने के लिए गया कि गांव वालों को इस घटना के सम्बन्ध में कुछ मालूम हुआ कि नहीं। बहुत अच्छी तरह पता लगाकर कि इस घटना की किसी को कानों कान खबर नहीं हुई, वह भानजी के पास आकर खड़ा हो गया। मृत दारोगा की तरफ उसने एक बार भी नहीं देखा।

"बिटिया?"

"हां, मामा!"

शिवबालक समझ गया कि यह रोज का प्रेम पगा 'मामा' शब्द नहीं है, इसमें भय भी है। शायद वह सोच रही हो कि इसके सिर पर

हत्या सवार है, न मालूम उसी को मार बैठे। यह बात महसूस कर बूढ़े का हृदय वेदना से ऐंठ उठा।

"बेटी! अपने कपड़े लुग्गे बांध लो, अभी तुम को घर पर कर आवें।"

मामा उसे कहां ले जाना चाहता है, यह वह नहीं समझ पायी। पर वह जल्दी से कपड़े लत्ते संभालने लगी। उधर शिवबालक ने घर का एक कोना खोद कर अपनी सारी उम्र की कमाई की पोटली निकाली, जिसमें तीन सौ रुपये थे।

शिवबालक ने भानजी के सामानका अधिकांश अपनी पीठ पर ले लिया और इस प्रकार मामा तथा भानजी निकल पड़े।

भानजी को पांच कोस दूर पर उसके ससुराल में पहुंचा कर और उसके हाथ में जीवन भर की कमाई की थैली सौंप कर शिवबालक रातोंरात नबादा लौट आया।

शिवबालक जिस समय नबादा में लौटा, उस समय सबेरा हो चला था। वह अपने घर गया। पर उसने समझ लिया कि इस मकान के साथ अब उसका कोई संबंध नहीं है। एक बार उसके दिमाग में आया कि वह फरार हो जाय, पर इस विचार से वह प्रलुब्ध नहीं हुआ। उसने सोचा कि चौदह साल से उसने कोई मुकदमा नहीं दिया, पर आज देगा।

वह सीधा बन्दे अली के तम्बू में दाखिल हुआ।

"हुजूर—!"

कोई जवाब नहीं मिला। बन्देअली सो रहा था।

"हुजूर खां साहब, हुजूर खां साहब!"

बन्देअली ने शोर से नाराज होते हुए आंखें खोलकर देखा तो सामने कल का वह चौकीदार, हां शिवबालक चौकीदार खड़ा था—"अभी अच्छी तरह सबेरा नहीं हुआ। सबेरे की नींद लाख रुपये की

होती है और तैंने उसे खराब कर दी। अब सारा दिन ऊंघते बीतेगा। क्या है बे?"

पर जरा सोचकर देखा कि शिवबालक इस तरह चुपचाप आया है। हो न हो कोई बात जरूर है। बन्देअली ने कहा—"तू उस जमाने में मुझे कितने मुकदमे दिया करता था; याद है?"

"हां—!"

"फिर अब क्या हो गया?"

शिवबालक ने देखा कि बन्देअली तो उसे बात ही नहीं करने दे रहा है। उसने थूक निगलते हुए एकाएक कहा—"आज एक मुकदमा लाया हूं।"

"ऐं, मुकदमा?" बन्देअली खुशी के मारे उठ बैठा। उसने शिवबालक का बैठा हुआ गला, धंसी हुई आंखें और धूल से भरे पांव कुछ नहीं देखे।

बन्देअली ने पूछा—"काहे का मुकदमा है?"

"कतल का है।"

"ऐं!" बन्देअली की बांछें खिल गयीं। सरकार ने इन्हीं लोगों पर शान्तिरक्षा का भार दे रखा है।

"हां?"

"कौन मारा गया?"

शिवबालक जरा हिचकिचाया। फिर बोला—"दारोगा सुलतानसिंह।"

बन्देअली के सिर पर जैसे वज्र गिरा, बोले—"कौन?"

"हां, छोटे दारोगाजी मारे गये।"

बन्देअली उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—"किसने मारा?"

"मैंने, मुझे गिरफ्तार किया जाय।"

बन्देअली ने कही हुई बात का ठीक विश्वास नहीं किया। फिर भी उसने तकिये के नीचे से तमंचा निकाल लिया। फिर बोला—"सच है?"

"हां, सच है।"

"क्यों तुमने ऐसा किया ?" शिवबालक अब तू से तुम हो गया था।

शिवबालक ने भानजी वाला मामला नहीं बताया। सिर्फ बोला—"वे मेरे घर पर गये थे।"

"घर पर गये थे ?"

"हां !"

"क्यों ?"

"गाली गलौज करने।" कुछ कहना चाहिये, इस लिए शिवबालक ने कहा।

बन्देअली ने मुंह से 'ओ' कह दिया; पर खुर्राट था, समझ गया, यह कारण नहीं हो सकता। उसने मन को समझा लिया कि घूस के बंटवारे पर लड़ाई हो गयी होगी।

शिवबालक बिना चूं किये गिरफ्तार हो गया।

इसके बाद बन्देअली पूरे लश्कर के साथ तहकीकात करने वारदात की जगह पहुंचा। साथ साथ मुश्क बंधा हुआ चौकीदार भी चला।

बड़े दारोगा ने बड़ी देर तक लाश का निरीक्षण किया। फिर जिरह और इजहार शुरू हुए। बन्देअली सुलतानसिंह की मृत्यू से दुःखी था, पर जब वह मर ही गया, लौट नहीं आने का, फिर क्यों न उसकी मृत्यु का उपयोग अपने फायदे के लिए किया जाय, इस तर्क का अनुसरण कर बन्देअली ने काम शुरू किया।

उसने गांव के सब धनियों को एकत्र कर चौकीदार के मकान में बुलवाया और चिल्लाकर कहा—"मैं जानता हूं, यह दारोगा जी कांग्रेस के कहने पर मारे गये हैं और तुम लोग कांग्रेस के मेम्बर हो, यह साबित है। तुम लोग एक एक फांसी पर चढ़ोगे, सरकार से लड़ना कोई मजाक नहीं है।"

गिरफ्तार लोग यों बड़े दबंग थे। पर उन्होंने जो लाश देखी, और

सो भी दारोगा की तो सबकी सिट्टी पिट्टी भूल गयी। सब ने बारी बारी से बन्देअली से चुपचाप बात की।

चौकीदार ने शायद सवेरे के समय महज व्यंग के रूप में बन्देअली से जाकर कहा था कि मुकदमा लाया हूं, पर व्यवाहारिक क्षेत्र में वही बात होकर रही। बन्देअली नवादा से पन्द्रह सौ की थैली और चार मुजरिम लेकर लौटा।

इस पन्द्रह सौ की थैली के अतिरिक्त इस उपलक्ष्य में बन्देअली को और भी एक चीज मिली। यह है वाइसराय का मैडल। कांग्रेसी भीड़ के हाथों दारोगा सुलतानसींह को अपनी जिन्दगी खतरे में डालकर अन्त तक बचाने की कोशिश करने के कारण ही यह मैडल बन्देअली को दिया गया।

महायुद्ध की देन

रामगढ के पास का एक गांव। वही रामगढ जहां १९४० में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था, उसके बाद फिर सालों तक अधिवेशन की नौबत ही नहीं आयी।

एक अच्छे किसान के घर में उसकी पत्नीसे बातचीत हो रही थी। किसान का नाम था जगन्नाथ महतो और स्त्री का नाम लछिया। लछिया कह रही थी—"सुना है कि रामगढ में फौज की बहुत बड़ी छावनी होने जा रही है।"

जगन्नाथ ने 'हां' तो कहा पर उसने कोई उत्साह नहीं दिखलाया, वचह रखी पर रस्सी चढाता गया। फिर बोला—"अच्छी बात नहीं है।'

"क्यों, अच्छी बात क्यों नहीं है? तब की कांग्रेस हुई थी तो हम लोगों को कितना फायदा रहा"—कहकर उसने अपनी खपरैल की तरफ देखा। उसकी दृष्टि का आशय यह था कि यह खपरैल उसी कांग्रेस की देन है, नहीं तो फूस की झोंपडी थी। बोली—"छावनी होगी तो फिर रुपये का दो सेर दूध बेचने का, तरकारी दाम पर बेचने का मौका मिले।"

जगन्नाथ ने चरखी को रखते हुए कुछ खिन्न होकर कहा—"दुर पगली, जिसको समझती नहीं है, उस पर बात करती है। कहां कांग्रेस वाले, और कहां ये फौजी।"

बात फिर भी लछिया की समझ में नहीं आई। वह तो अपनी बुद्धि से यही समझती थी कि ज्यादा आदमी आयेंगे तो ज्यादा दाम मिलेगा, और उसे गहना गुरिया बनाने का मौका मिलेगा। गांव के सभी लोग यही सोचते थे। जगन्नाथ फिर भी अपने मत पर डटा रहा। बात यह है कि वह कुछ दिनों तक फौज में सिपाही के रूप में तो नहीं पर झाड़ूदार के काम पर नौकर रह चुका था, और वह जानता था कि फौजी लोग कैसे रहे हैं।

थोड़े दिनों के अन्दर सबसे पहले तो ठेकेदार लोग आये, और जल्दी जल्दी फौजों के रहने के लिये इमारतें बनने लगीं। सच कहा जाय तो छावनी नहीं, बल्कि बेरकों की एक शृंखला बनती गई। सरकार की यह योजना थी कि यदि जापानी आसाम और बंगाल को पारकर आयें तो इस प्रकार की जंजीरी छावनियों से शत्रु का सामना किया जायगा। सरकार को विशेषज्ञों ने बताया था कि इस भू-भाग में कुछ प्राकृतिक सुविधायें ऐसी हैं जिससे आत्मरक्षा अपेक्षाकृत आसान होगी।

चारों तरफ के गांवों में जोश था। लछिया की तरह सभी लोग बड़ी बड़ी उम्मीद बांधे हुए थे। कुछ उम्मीद पूरी होती भी दिखाई पड़ी क्योंकि जो बैरकें बनने लगीं, उनमें आसपास के गांव वाले गारा ढोने, पानी भरने आदि सैकड़ों कामों में लिये गये। कारीगर तथा राज तो बहुत कुछ बाहर से आये थे।

जगन्नाथ महतो ने भी कुछ काम ले लिया। घर के सारे काम काज का भार लछिया और चौदह वर्ष की लड़की राधा पर पड़ा, पर लछिया ने खुशी से सारा काम सम्हाल लिया। जो दो और बच्चे थे, वे भी अपने ढंग से घर के काम में हाथ बंटाते थे।

गांव केबाहर ही बरकें बन रही थी, पर न मालूम क्यों कुछ दिनों से नाप जोख करने वाले लोग अपने तरह तरह के अद्भुत यन्त्र लिये हुए गांवों के अन्दर भी घुसने लगे, और नाप जोख करके एक लम्बे से कागज पर कुछ लिखने लगे। इनके काम की देख-रेख करने के लिये कुछ गोरे भी गांवों में आने जाने लगे। इन गोरों के सम्बन्ध में लोग कहते थे कि ये अंग्रेज नहीं हैं, अमेरिका या कहां के हैं, पर लछिया को अंग्रेजों का बहुत बड़ा तजरबा था, उसने उसके पहले सारी जिन्दगी में दो अंग्रेज देखे थे। इससे उसे इन गोरों में और अंग्रेजों में कोई फर्क नहीं मालूम होता था। ये लोग अजीब आदमी थे। गांव के बच्चों को लोकालोका कर अठन्नी रुपया देते थे, यहां तक कि अब गांव के बच्चे इन्हें देखते ही "साहब, रुपी रुपी" कहकर चिल्लाते थे, और ये लोग उन्हें रुपये पैसे देते थे। ये लोग न तो गांव वालों की बोली समझते थे, और न गांव वाले इनकी, फिर भी उनकी इस उदारता के कारण गांव वालों में और उनमें एक मधुर सा सम्बन्ध उत्पन्न हो रहा था।

इतने में एक दिन खबर आयी कि कुछ गांव खाली कराये जायेंगे, उनकी जगह पर हवाई जहाज या काहे का अड्डा बनेगा। जगन्नाथ के गांव के ही एक नौजवान ने यह खबर दी थी। थोड़ी ही देर में उसके पास लोग पहुंचने लगे, सब चाहते थे कि बिलकुल प्रामाणिक खबर मिले।

जगन्नाथ भी काम से लौटकर उसके पास पहुंचा। उस बेचारे को कुछ विशेष मालूम नहीं था, पर लोगों ने प्रश्न कर करके उससे कई झूठ कहलवा लिये थे। वह अब दो तीन गांवों का नाम ले रहा था कि अमुक अमुक गांव खाली कराये जायेंगे। वह अपने गांव वीरपुर का तो नाम ही ले रहा था तिस पर पास के दो गांवों का नाम लेने लगा था।

जगन्नाथ ने उससे सब बातें पूछ लीं। उत्तरों से उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। वह मानो इसी के लिये तैयार था। और कई आदमी वहां पर जमे हुए थे। उनमें से एक ने उस नौवजवान से पूछा—"तो महादेव, हम लोग कहां जायेंगे?"

महादेव से इस सम्बन्ध में पचासों व्यक्तियों ने प्रश्न किये थे। अब तक उसने कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया था पर अब की बार का प्रश्न उसके लिये ऊंट पर आखिरी तिनके की तरह साबित हुआ, उसने एक उत्तर दे ही डाला—"हम लोग दूसरे जिले में भेजे जायेंगे।"

उपस्थित सब लोग मानो इसी महान समाचार की प्रतीक्षा कर रहे थे। सब लोग डरे, पर इस समय उनमें डर से भी कहीं अधिक प्रबल भावना यह सिद्ध हुई कि कौन जाकर इस ताजी खबर को लोगों में फैला पाता है। सब लोग बिना कुछ कहे सुने फौरन चल पड़े। मिन्टों में खबर चारों तरफ के गांवों में फैल गयी।

जगन्नाथ ने आकर घर में कहा—"मैंने पहले ही कहा था कि इनका आना बुरा होगा। अब वही बात हुई न?"

लछिया भी गांवों के खाली कराये जाने की बात सुन चुकी थी, पर उसने अपने तगड़ आशावाद के कारण इस खबर को भुला दिया था। पर ज्योंही जगन्नाथ ने उपरोक्त बात कही, त्योंही उसे यह बात याद आ गयी। उसके मन पर एक अज्ञात आशंका छा गई। फिर भी उसे मानो जबर्दस्ती हटाती हुई बोली—"सब गये हैं—"

जगन्नाथ झुंझला उठा, बोला—"जब गांव तोप से उड़ा दिया जायगा, तब सब मालूम होगा। ये अमेरिकन कोई मामूली बदमाश हैं।"— फिर उनकी बदमाशी का काला चित्र पेश करने के लिये उसकी जीभ पर अनायास एक बात आ गयी, बोला—"अब अंग्रेजों की टोपी खत्म हो चुकी, आगे इन्हीं की टोपी चलेगी।"

लछिया ने पता नहीं इस वक्तव्य का क्या अर्थ लगाया, पर उसका चेहरा फक पड़ गया। वह चुप रही। उसने बहुत से लोगों से गांव के खाली कराये जाने की बात सुनी थी। लछिया तो कुछ नहीं बोली, पर राधा बीच में बोल उठी—"पर बाबू अमेरिकन तो बहुत अच्छे आदमी हैं-उसने निकालकर दो रुपये दिखलाये, बोली—"साहब ने मुझको दिये।"

इसके पहले भी कई बार कथित अमेरिकन पादरी साहब ने राधा को

तथा उसके छोटे भाईयों को रुपये दिये थे, लछिया उन्हें फुसलाकर इन रुपयों को ले लेती थी। उसने अब तक इन रुपयों की बात पति से नहीं कही थी। भला जब गांव के सब बच्चे रुपये लेते थे तो इसमें दोष की क्या बात थी? इस बात को उसने पति से गुप्त इसलिये रखा था कि वह एकाएक एक दिन एक हार पहनकर उसे आश्चर्य में डाल देना चाहती थी। उसी की हिदायत के अनुसार बच्चों ने रुपयों की बात छिपा रखी थी। पर आज राधा ने दाता साहबों का पक्ष समर्थन करने के लिये एक असावधान मुहूर्त में इस बात को कह डाला था। इस पर लछिया एकदम सकपका गयी, और उसकी आंख में राधा के प्रति एक नीरव डांट झलक गयी।

जब दोनों बच्चों ने देखा कि राधा ने कह दी तो उन्होंने सोचा कि वे भी पीछे क्यों रहें, उन्होंने भी अपनी अपनी जेब से एक एक अठन्नी निकालकर जगन्नाथ को दिखलाया और बोले—"हमको भी मिले हैं—"

जगन्नाथ ने कुछ आश्चर्य और शायद कुछ भय के साथ पूछा—"यह क्या?"

तब लछिया ने बताया कि 'अमेरिकन' साहबों ने रुपया दिया है। पहले के रुपयों की बात वह छिपा गयी।

जगन्नाथ ने सब कुछ सुनकर गम्भीर होते हुए कहा—"यह अच्छी बात नहीं है।" फिर सोचकर बोला—"जब अमेरिकन साहेब आवें तो राधा उनके सामने न निकला करे।" उसका स्वर आज्ञामूलक था।

अगले दिन जब 'अमेरिकन' साहब टहलता हुआ उधर आया, तो राधा भीतर छिप गयी। 'अमेरिकन' साहब ने बच्चों को एक एक रुपया दिया और अपनी भाषा में कुछ पूछा। यद्यपि बच्चे उसकी भाषा में नहीं समझते थे, पर वे समझ गये कि राधा की खोज कर रहा है। अमेरिकन साहब ने जेब से दो रुपये निकालकर बच्चों को दिखलाया, बच्चे उसे लेने के लिये दौडे। साहब ने उन्हें रुपये नहीं दिये, इशारे से पूछा कि वह किधर है।

लछिया तथा राधा आड़ में खड़ी रहकर सब कुछ देख रही थी। लछिया ने जो रुपये देखे तो मुँह में पानी भर आया। साहब बच्चों से अपनी भाषा में कुछ कह रहे थे।

देखते देखते लछिया ने राधा से कहा—"जा न, रुपये ले ले। इसमें बुराई थोड़े ही है, साहब खुशी से दे रहे हैं।"

राधा ने एक बार अपनी मां की तरफ देखा, फिर फुदकती हुई बाहर निकल गयी और साहब ने उसे रुपये दिये, और हँसकर चला गया।

जिस समय इस प्रकार एक अमेरिकन राधा की चारों तरफ फासा डाल रहा था, उसी समय सैकडों अमेरिकन सैकडों राधाओं के ईर्द-गिर्द लासा डाल रहे थे। डालर ने अपनी पतनकारी शक्ति का प्रयोग सभ्यता से अपेक्षाकृत दूर छोटा नागपुर के प्रान्त में शुरू कर दिया था। मित्र पक्ष स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र के लिये लड़ाई जो लड़ रहे थे।

गांववालों की सबसे बुरी शंका एक दिन पूरी होकर रही। इस गांव वालों को एकाएक यह हुकुम मिला कि सात दिन के अन्दर वे गांव को खाली कर दें। उनपर मानो वज्रपात हुआ। यह कहा गया कि सरकार किसी के साथ अन्याय नहीं करना चाहती, इस लिये जिनके मकान लिये जायेंगे उनको यथेष्ठ क्षतिपूर्ति दी जायगी। यह बताया गया कि किसको कितना देना है। इस सम्बन्ध में सरकार के पास पहले ही से हिसाब तैयार है।

लछिया पर तो इस खबर का इतना बुरा असर हुआ कि वह कुछ देर तक सन्न रह गयी। उसने इसी खपरैल को घेर कर अपने स्वप्न तैयार किये थे। अब जो उसे मालूम हुआ कि उसे इस स्वप्न का परित्याग करना पड़ेगा तो वह बिल्कुल किंकर्तव्य विमूढ हो गयी। उसकी समझ में नहीं आया कि कैसे क्या होगा। जगन्नाथ ने जो यह बात सुनी तो वह चुप रहा, बोला—"अभी क्या हुआ है, अभी तो और होगा।"—उसे ऐसा कहने से ही कुछ संतोष हुआ। राधा भी परिवार के इस दुख को पूरी तरह से हृदयगम कर गयी, पर छो` बच्चे बिल्कुल पहले की तरह निश्चिंत

होकर खेल रहे थे, और अपने स्वभाव के अनुसार चिल्ला रहे थे। लछिया को यह बात न मालूम क्यों असहनीय मालूम हुई, और उसने बच्चों को दो दो चांटें जमा दिये। वे मैं मैं करके रोने लगे। पर आज किसी ने उनको नहीं मनाया।

पारिवारिक कौंसिल में यह तय हुआ कि आश्रय के लिये बच्चों के ननिहाल में चला जाय। तदनुसार जगन्नाथ अगले ही दिन सात मील दूर अपनी ससुराल पहुंचा। पर शाम तक वहां से मुंह लटकाये हुए लौट आया। बताया कि उस गांव पर भी वही आफत पड़ी हुई है। वहां वाले तो यहां आने की सोच रहे थे। लछिया की चिन्ता और भी बढ़ गयी। अब तो जैसे कहीं कोई ओर छोर ही नहीं दिखलाई दे रहा था।

जगन्नाथ ने कहा, तो क्या है—"जो सबका होगा, वही हम लोगों का होगा।"

"वह क्या ?"—लछिया ने पूछा।

"वही पेड़ तले जाकर बैठ जायेंगे। सब लोग ऐसा ही तो करेंगे"—जगन्नाथ ने कुछ तैश से कहा।

आखिर हुआ भी वही। ६ दिन तक लोग हिले नहीं यद्यपि भीतर सभी कुछ न कुछ तैयारी कर रहे थे। सातवें दिन जब लोगों ने देखा कि फौज आ चुकी है, लोगों को डराने के लिये कई तोपें भी लाई गई, तब लोग निकलने लगे। जिनको कहीं आश्रय था, वे वहां चले गये, बाकी न मालूम किस मोह में उजडे हुए गांव के ही पास मैदानों में पडे रहे, और चूल्हा जला जला कर खाना बनाने लगे। अन्तिम दिन रात भर लोगों का गांव के अन्दर आना जाना जारी रहा।

क्षतिपूर्ति के रूप में रकम बांटने के लिये अगले दिन वही 'अमेरिकन' साहब आया। न मालूम क्यों एक पादरी को यह काम दिया गया था। यद्यपि जगन्नाथ बराबर ऐसा बन रहा था कि जैसे जो कुछ हुआ उसके सम्बन्ध में उसे पहले से पता था, पर जब वास्तविक विपत्ति आयी, और

उसे घर छोड़ना पड़ा तो वह इतना घबड़ा गया कि लछिया को ही अपने मकान की क्षतिपूर्ति के लिये साहब के सामने जाना पड़ा।

साहब ने दुभाषिये के जरिये उससे पूछा—"तुम कहां ठहरी हुई हो? उसने बताया कि सामने मैदान में उसका परिवार पड़ा है। इस पर साहब की आंखें चमक उठीं। उसने उसे गिनकर कुछ नोट और रुपये दिये। वह लेकर चली आयी। ये नोट और रुपये उसकी गृहहीनता के प्रतीक थे, इस कारण वह रास्ते भर रोती बिलखती हुई आयी।"

कहा जाता है कि जब विपत्ति आती है तो गोल बांध कर आती है। कम से कम यह बात इस परिवार के सम्बन्ध में सच हुई। जो लोग पेड़ के नीचे पड़े हुए थे, उनमें एकाएक हैजा फैला। चूंकि यह स्थान फौजी छावनी के पास पड़ता था, इस कारण बहुत जल्दी इस रोग पर काबू पा लिया गया, पर जितने घंटे इस रोग का प्रकोप रहा, उतने ही घंटों में उसने कई आदमियों की जान लें ली जिन में जगन्नाथ महतो भी था।

लछिया को इस घटना से इतनी चोट लगी कि वह तीर से घायल हिरणी की तरह गिर गयी, पर बच्चों का मुंह देखकर उसने धीरे धीरे ढाढ़स बांधा। गरीब परिवार में रोटी कमाने वाले की मृत्यु के जो दूर के नतीजे होते हैं, उनके अलावा वह तात्कालिक रूप में भी एक भयंकर विपत्ति होती है क्योंकि अभी उठाने से लेकर श्राद्ध तक सैकड़ों तरीके के खर्च होते हैं। यह खर्च परिवार को बहुत अखरता है।

लछिया ने मकान की क्षतिपूर्त्ति के रूप में मिले हुए दो सौ रुपयों में से ही इस अवसर पर खर्च किया। बहुत हाथ खींचकर किया, फिर भी पचास से ज्यादा रुपये निकल गये।

जगन्नाथ के मरने के बाद मौखिक सहानुभूति दिखलाने वाले कई आये, लछिया ने उन सबको दूर रखा। जो भी रिश्तेदार आते थे वे कुछ सलाह ही देते थे। कोई गांठ से कुछ देता नहीं था। हां, उस अमेरिकन साहब ने कुछ रुपये दिये थे। अक्सर वह साहब इन पेड़ों के नीचे आता

था। और अपनी आदत के अनुसार सब बच्चों से बात करता था। अब वह कुछ कुछ हिन्दी बोलने लगा था। यद्यपि उसका शब्द भंडार अब भी बहुत छोटा था।, फिर भी देहातियों में दूसरों की बातों को समझने की जो विशेष सामर्थ्य होती है उसके कारण देहाती उसकी बात बहुत कुछ समझ जाया करते थे। लछिया एक इस्गो साहब को कुछ मित्र समझती थी।

लछिया के पिता अपने दामाद की मृत्यु के बाद से ही आकर डट गये थे। उनका इरादा था कि सब लोग बैल, सामान आदि लेकर उसीके साथ चले चलें। लछिया का यद्यपि घर गया था, पर उसकी कुछ जमीन इधर थी, जिसका उसे बहुत मोह था। स्वप्नों के शायद ही कोई नियम हों। जब पति की मृत्यु के बाद वह नहीं गयी तो उसका पिता वहां से चला गया। जाते समय वह उसे इस बात पर राज़ी कर गया कि जल्दी से जल्दी वह ज़मीन को बेच डाले, और फिर चली जावे।

कहने को तो लछिया ने जमीन बेचना स्वीकार कर लिया, पर वह स्वप्न देखती थी कि उसी जमीन के किनारे वह एक झोंपड़ी बनायेगी, और उसीमें फिर से जगन्नाथ महतो का कुल चमकेगा। वह जमीन बेचने में आनाकानी कर रही थी। और सच तो यह है कि कोई ऐसा खरीददार भी नहीं मिल रहा था। सब लोग इतने घबडाये हुए थे कि वे समझते थे कि न मालूम फिर इस जमीन की जरूरत पड़ जाय और वह जब्त कर ली जाय।

इसी प्रकार दो तीन महिने और बीत गये। खेती का समय आया और चला गया। लछिया किसी को अधबटाई पर भी खेती के लिये राजी न कर सकी। नतीजा यह हुआ कि कुछ ही रुपये रह गये, और बाकी सब खर्च हो गये। इतने में एक दिन उसका भाई आया, और समझा बुझाकर उसके बैलों को ले गया। लछिया ने भी समझा कि बैल बैठे बैठे खा रहे हैं, इससे अच्छा है वहीं जाकर रहें। अब कुछ कुछ लछिया को विश्वास हो चला था कि उसे अब मायके में ही शरण लेनी पड़ेगी।

वह शायद और कुछ दिन लड़ती, पर एक दिन उसने किसी पड़ोसी को राधा के विषय में कुछ कहते सुना जिसका आशय यह था कि अमेरिकन साहब उससे फंसा हुआ है। लछिया जानती थी कि इस बात में कुछ सत्य नहीं है, फिर भी उसे इतना क्रोध आया कि वह सीधे राधा के पास पहुंची और पूछा—"मैं जब धान कुटवाने गयी थी तो अमेरिकन आया था ?"

"नहीं तो"— राधा ने कहा।

पर लछिया ने कुछ नहीं सुना। सामने एक पतली सी छड़ी पडी हुई थी, उसने उसे उठाया, और लगी राधा को मारने। एक दो तीन चार उसने कई छड़ी जमाई, और बोली—"कलमुंही, फिर अगर उस अमेरिकन से बोली तो खाल उधेड़ लूंगी।"

इस प्रकार जो मारपीट हुई, उससे कुछ बात बनी नहीं, बल्कि और बिगड़ी। जिन लोगों को इस सम्बन्ध में कुछ शक नहीं था, उसमें भी इस विषय में शक हो गया, और खुल्लमखुल्ला लोग अंडबंड कहने लगे। लछिया के पड़ोसी उसी की तरह अभागे थे, पर निन्दा में उनकी दिलचस्पी इससे कुछ कम नहीं हुई थी।

यहां तक कि अब लछिया ने इसी में भलाई समझा कि वह यहां से चली जाय। उसे इस समय फिर अपने पति की बहुत याद आयी, ऐसा मालूम पड़ा कि यदि आज वह जीवित होता तो इस प्रकार की बातें तो कोई नहीं कह सकता था। पुरानी चोट उखड़ गई, वह फिर रोने लगी। अन्त में उसने यह निश्चय कर लिया कि यहां से चल देना है। उसने मायके में खबर भेजी कि आकर ले जाओ, पर वहां इस समय कटाई का जोर था, कोई नहीं आया। पर लछिया को अब यहां एक क्षण भी रहना भार मालूम हो रहा था।

उसने खुद ही बन्दोबस्त करके यात्रा शुरु करदी। यद्यपि रास्ता कोई अधिक नहीं था और दिन भर में यात्रा हो सकती थी, पर बांधते छांदते देरी हो गयी और रास्ते में ही रात आ गयी। पहले तो अपने गांव के एक

पड़ोसी को उसने इस बातपर राजी किया था कि वह अपनी बैलगाड़ी पर उसके सामान लादकर साथ चले। सामान इतना अधिक था कि गाड़ी उसी से भर गयी। छोटे बच्चे किसी तरह गाड़ी पर बैठा दिये गये पर राधा और लछिया उसके पीछे पीछे चल पड़ी।

इतने में जब वे एक पहाड़ी के पास पहुंचे तो एकाएक कुछ लोगों ने उन पर हमला कर दिया। गाड़ीवान गाड़ी छोड़कर भाग गया। हमला करने वालों ने लछिया और राधा दोनों को पकड़ लिया। कुछ लोगों ने बैलगाड़ी का सामान को देखा कि उसमें कुछ लेने काबिल है या नहीं। बहुत कम चीजें ऐसी मिली जो हमला करने वालों के मतलब की होती। उन चीजों को निकालकर गाड़ी अलग लगा दी गयी। बैल को ले लिया गया और लछिया तथा राधा को पकड़ लिया गया। हमला करने वाले अमेरिकन या चीनी नहीं, बल्कि भारतीय थे। इन लोगों ने अमेरिकन और चीनी फौज को लड़कियां सप्लाई करने का ठेका ले रखा था।

इन लोगों ने पहले तो दोनों स्त्रियों की तलाशी ली। राधा के पास तो कुछ विशेष मिला नहीं, पर लछिया के पास जेवर तथा रुपये निकले। इन दोनों को इसके बाद पास ही कहीं खड़ी जीप पर बैठा दिया गया और इन्हें लेकर सेना के वेश्यालय में दाखिल किया गया। सेना की सब आवश्यकताओं की पूर्त्ति करना सरकार अपना कर्त्तव्य समझती है, तदनुसार वेश्या सप्लाई भी की जाती है। जो साधारण वेश्यायें होती है, उनसे सेना का काम इस लिये नहीं चलता कि एक तो ये वेश्यायें सैनिकों से अच्छी तरह परिचित होती है। वे मारते हैं, पैसा नहीं देते, लूट ले जाते हैं, इस लिये उन्हें कोई भी वे वेश्या पसन्द नहीं करती है, और सैनिक निवास में आकर रहना नहीं चाहतीं। सरकार भी उन्हें इस लिये नापसन्द करती है कि उनमें अक्सर कुत्सित बीमारियां होती है, और चूंकि ऐसी बीमारियां सैना की लड़ने की शक्ति को पंगु कर देती है, इस लिये सरकार इन बीमारियों से पीड़ित स्त्रियों को पसन्द नहीं करती, और उन्हें जहां

तक हो सके सैना निवास के इर्द-गिर्द आने नहीं दिया जाता। इसी कारण आसपास के देहात की लड़कियों को फुसलाकर या जबर्दस्ती पकड़ लाया जाता है। इसी प्रकार से सभ्यता और प्रजातन्त्र के लिये लड़ाई लड़ी जा रही थी।

गाड़ीवान तो भाग गया, मां और बेटी कैद हो गयीं, बैल कसाई खाने में बेच दिया गया, और उन दो बच्चों को पादरी के यहां पहुंचा दिया गया। अमेरिकन सेना को जैसे उसकी शारिरिक जरूरत की पूर्ति के लिये वेश्यायें सप्लाई होती थीं, उसी प्रकार उसकी आध्यात्मिक जरूरत के लिये अमेरिकन पादरियों का मिशन भी आया हुआ था। प्रजातन्त्र और न्याय के लिए युद्ध करने वाली दयालु अमेरिकन सरकार अपने सिपाहियों की आत्मा और शरीर दोनों के लिए प्रबन्ध रखती थी, और यद्यपि इन उपायों में से एक स्वर्ग को दूसरा और नरक को ले जाने वाला था, तिस पर भी अमेरिकन तथा उसकी मित्र ब्रिटिश सरकार का विवेक संतुष्ट इस लिए था कि जिन लड़कियों को इस प्रकार कामुकता का ईंधन बनाया जाता था, इस में सन्देह नहीं, उन्हें काफी पैसा दिया जाता था गोकि भारतीय ठेकेदारों के कारण वे पैसे बीच वाले ही खा जाते थे। पर इससे क्या? सरकार तो पैसे देती थी।

अमेरिकन पादरी आये तो थे अमेरिकन सैनिकों की रक्षा करने, पर लगे हाथ वे भारतीयों की आत्मा की भी भलाई करने से चूकने वाले नहीं थे। जगन्नाथ महतों के दोनों बच्चे इन्हीं के पंजे में पड़ गये। वह पादरी भी इनहीं में था। यह नहीं कि इन पादरियों को यह मालूम नहीं हुआ कि इन बच्चों की मां तथा बहिन कहां गयी थीं, पर ईश्वर के इन अनन्य सेवकों को इन सांसारिक बातों से सम्बन्ध ही क्या था। वे तो केवल पारलौकिक बातों से ही सम्बन्ध रखते थे। बाकायदा दोनों बच्चे महापुरुष ईसा की शरण में लाए गए। जो पादरी बच्चों को रुपया दिया करता था, उसीने मिठाइयां देकर उन्हें ईसाई बनाया।

लछिया और राधा को पहले तो ऐसी जगह पर भेजा गया जहां कुलवधुओं को वेश्या बनाया जाता था। जैसे घोड़ों को पहले शिक्षा दी जाती है उसे अंगरेजी में तोड़ना कहते हैं, वैसे ही लछिया और राधा के क्षेत्र में पहले तोड़ने की प्रक्रिया हुई।

यह तोड़ने की प्रक्रिया और कुछ नहीं थी, एक कमरे में एक एक लड़की को बन्द किया जाता था और फिर उस पर कहीं एक, कहीं दो, परिस्थिति के अनुसार आठ दस तक मुचंड छोड़े जाते थे। ये लोग उसका सतीत्व नष्ट करते थे। जब इस प्रकार स्त्री तोड़ दी जाती थी तब उसकी डाक्टरी जांच करने के बाद सैनिक के लिए सप्लाई किया जता था।

लछिया और राधा साथ ही साथ रहीं। लछिया समझ गयी कि क्या किस्सा है उसने हाथ जोड़कर वहां के अमेरिकन साहब को, क्योंकि अब वह अर्घ्यसरकारी तौर पर सैनिक संगठन के सुपुर्द हो चुकी थी कहा—"इसे छोड़ दो"

पर उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

लछिया ने फिर अनुरोध किया, तब साहब ने कहा—"टुम राजी हैं?"

"लड़की को छोड़ दो।"—लछिया ने कहा।

उस अमेरिकन ने बेतकल्लुफी के साथ पूछा—"टूम राजी है?"

लछिया ने जैसे कुछ सोचा, एक क्षण के लिए उसके सामने अपने पति जगन्नाथ महतों की याद आयी, जो घर कभी था उसकी सुधि आयी, बरसों की याद आयी। अब यही राधा ही तो भूतकाल के साथ एकमात्र कड़ी थी। दांत से दांत लगाकर अपने ऊपर जोर करती हुई बोली—"हां, इसे छोड़ दो"—कहकर आंखें झपका लीं।

साहब ने फौरन बिना सोचे लछिया से कहा—"अच्छा, टुम कपड़े उतार लो',—

लछिया ने शायद इसे समझा नहीं। तब एक भारतीय ने समझाकर कहा—"साहब कह रहे हैं कि कपड़े उतार लो।"

"कपड़े उतार लूं ?" —लछिया ने भय तथा आश्चर्य से पूछा।

उस भारतीय ने कहा—"हां, फौरन उतारो।" कहकर वह उसके कपड़े उतारने के लिए आगे बढ़ा, और उसने मालूम होता है इस काम में इतनी दक्षता प्राप्त की थी कि फौरन एक ही झटके में लछिया को नंगी कर दिया। लछिया ने झट से हाथ रखकर अपनी लज्जा निवारण किया, पर इस पर भी वह नहीं बची। खैरियत यह है कि लछिया तथा राधा को तोड़ने के लिए अलग अलग कमरे में ले जाया गया।

स्वतन्त्रता तथा लोकतन्त्र के लिए लड़ाई वर्षों तक लड़ी गयी और इस बीच में इन लड़ने वालों की शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए सैकड़ों लड़कियां लाकर तोड़ी गयीं।

लड़ाई में मित्र पक्ष की जीत रही। कहने को तो जीत इस लिए रही, कम से कम मित्र पक्ष के पादरी तथा लेखक यही कहते रहे कि न्याय और सत्य के कारण विजय हुई, पर असल में विजय उन्नतर संगठन अस्त्र शस्त्र तथा संख्या से हुई।

युद्ध के बाद अमेरिकन, चीनी आदि जल्दी से जल्दी स्वदेश भेज दिये गये। सच तो यह है कि जापान के पीछे हटने के साथ ही अमेरिकन फौजों का रामगढ़ छावनी से हटना शुरू हो गया था जब फौज गयी तो साथ साथ वेश्यायें भी निकाल दी गयीं। इन में से कुछ तो स्थायी वेश्याओं में हो गयी। हमारा समाज ही ऐसा है कि गिरे को और भी गिराता है। बाकी अर्द्धवेश्या हो गयीं। और इधर उधर भीख मांगकर खाने लगी। अब रांची रोड के स्टेशन पर एक बुढ़िया रहती है। असल में बुढ़िया नहीं अधेड़ है, पर मुसीबतों ने उसे बुढ़िया बना दिया है। स्तन झूल गये, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गयीं, बाल कुछ उड़ गये, कुछ सफेद हो गये। यह स्त्री लछिया राधा का कुछ पता नहीं है। स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की लड़ाई में लछिया के सामने अब भी उस गांव की पुरानी तस्वीर नाच जाती है, पर अब न तो वह गांव है, और न वे आदमी हैं। स्वतन्त्रते, तेरे नाम पर क्या क्या अपराध किये जाते हैं।

देशभक्त का अन्त

परेश बाबू ने दफ्तर से आकर नौकर को बुलाकर पूछा, एक बार दो बार, पर उसने वही बात कही, छोटे सरकार जल्दी जल्दी किताबें नहीं पटककर एक भीड़ के साथ चले गए। परेश बाबू की कुछ समझ मे नहीं आया कि मामला क्या है? आखिर वे भी तो कभी छात्र थे, स्कूल में पढ़े एम. ए. किया, पर उन्होंने कभी ऐसा नहीं किया था। 'किताबें पटककर भीड़ के साथ चल दिया', अजीब बात है। परेश बाबू के माथे पर बल पड़ गये। यदि रजनी कान्त बीड़ी पीता, घर से रुपये चुराकर टाकी देखने जाता, तो वह उनकी समझ में आता। उन्होंने भी ऐसा कई बार किया था, उस जमाने में खैर टाकी तो नहीं था, पर सर्कस थे, नाटक कम्पनियां थीं, और अन्य आकर्षण भी थे।

पर यह भीड़ के साथ चले जाना। उनका मन न जाने क्यों शंका से पूर्ण हो गया। उन्होंने पत्नी को पुकारा—"माधवी, माधवी।"

माधवी रसोईघर में चाय बनवा रही थी, बोली—"आ रही हूं, चाय तैयार है। बस एक मिनट और...।"

अप्रसन्न होकर परेश बाबू ने ज़रूरत से ज्यादा चिल्लाकर कहा—"नहीं, नहीं ! चाय की बात नहीं है, इधर आओ न..."

माधवी की उम्र चालीस के करीब थी, पर अभी तक उसके चेहरे पर यौवन का कमल खिला हुआ था। वह जल्दी जल्दी एक तश्तरी में स्वल्पाहार और चाय लाकर परेश बाबू के सामने रखती हुई बोली—"आज कुछ देर हो गई...चूल्हा जल ही नहीं रहा है, कलुआ न मालूम कहां से गीली लकड़ी ले आया।"

चाय का एक घूंट पीते हुए परेश बाबू कुछ रूखेपन से, जैसे जवाबतलब करते हुए बोले—"तुम्हारे लड़के को यह दिन ब दिन हो क्या रहा है ?"

जब परेश बाबू को अपने लड़के रजनीकान्त से कुछ शिकायत होती थी, तो वे माधवी से उसका उल्लेख 'तुम्हारा लड़का' करके करते थे। माधवी को ऐसा सुनते सुनते वर्षों हो गये थे, पर ऐसे उल्लेख से हरबार हंसी आ जाती थी, अब भी आई। माधवी को मालूम था कि रजनीकान्त किताबें पटककर किसी से कुछ कहे बिना चला गया है, पर इसमें क्या गलती है ? यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। बी. ए. के अन्तिम वर्ष में पढ़नेवाला रजनीकान्त माधवी के लिये अब भी बच्चा ही था और बच्चों के लिए यह स्वाभाविक बात थी कि वे भीड़ के साथ हो लें।

माधवी बोली—"कुछ कहो भी तो, क्या हुआ ?"

अधिकतर नाराज़ होते हुए परेश बाबू ने कहा—'वाह कुछ हुआ ही नहीं, जूलूस में चला गया... ।"

फिर भी माधवी नहीं समझी। तब परेश बाबू ने समझाया कि गांधीजी डांडी यात्रा कर रहे हैं, देश में फिर से आन्दोलन चलेगा, लोग जेलों में ठूंसे जायेंगे, गोलियां चलेंगी, फांसियां होंगी... ।

यह ब्योरा सुनकर माधवी घबड़ा गई। बोली—"तो वह क्यों गया, उसे क्या पड़ा इन बातों से...।"

परेश बाबू चाय का अन्तिम घूंट पीते हुए बोले—"यही तो बात है, मेरी भी समझ में नहीं आती। बेचारे नौजवान इस समय जोश में आ रहे हैं, पर बाद को इन्हें कोई टकासेर भी नहीं पूछेगा। सन २१ में ऐसा ही हुआ। नेताओं ने कहा स्कूल कालेज छोड़ो, सैकड़ों ने छोड़ा, पर क्या हुआ? वे तो बेचारे मारे मारे फिरने लगे। हां नेताओं को फायदा रहा, कौंसिल असेम्बली में पहुंच गये। तुम्हें मालूम है बाबू शंभुनाथ मास्टर ने उसी जमाने में ताव में आकर टीचरी से इस्तीफा दे दिया, वे आज तक मारे मारे फिर रहे हैं, कहीं ट्यूशन करते हैं, तो कहीं किसी सौदागर की चिट्ठी लिखकर चवन्नी अठन्नी कमा लेते हैं ...।"

और परेश बाबू ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा—"इन नेताओं ने दूसरों के लड़कों से कहा कि पढ़ाई छोड़ कर देश के काम में लगो, पर इनके अपने लड़के बराबर पढ़ते लिखते रहे, कोई यहां पढ़ता रहा; कोई विलायत में..."

माधवी पर इन बातों का असर हुआ या न जाने क्या सोचकर वह बीच ही में बात काटकर बोली—"जाओ राजू को ले जाओ... ।"

परेश बाबू भी कुछ ऐसा ही सोच रहे थे, पर भीतर भीतर अकड़ बाधक हो रही थी, बोले—"हां, मैं यही करता फिरू, तुम क्यों नहीं उसे डांटती।"

"मैं खूब डाटूंगी, आने तो दो..."

पति पत्नी ने इस प्रकार इरादा तो किया, पर जब रजनीकान्त उस दिन रात दस बजे घर आया तो परेश बाबू सोने का बहाना कर अपने कमरे से नहीं निकले। हां, माधवी ने खानां परोसते हुए कहा—"तुम्हारे पिताजी बहुत नाराज हैं, तुम कहां गये थे?"

"जरा मीटिंग में गया था। कल से यहां नमक बनाना शुरू है।" वह खाने लगा।

माधवी मीटिंग की बात भूल गई, और यह भूल गई कि उसे डांटना है, उसे बस यही ख्याल हो रहा था कि लड़के ने कालेज जाने से पहिले खाना खाया था, तब से कुछ नहीं खाया है। रजनीकान्त को भूख अधिक लगी थी, वह एक एक कौर को निगल रहा था। रजनीकान्त ने कहा—"कल नमक बनाना शुरू है।"

"नमक बनाना?"—माधवी ने पूछा। उधर परेश बाबू भी चुपचाप पड़े मां और बेटे की बातचीत सुन रहे थे। उनके मन में एक बार इच्छा हुई कि उठकर लड़के को डांटे, पर सोचा रात का वक्त है, मुहल्ले वाले क्या कहेंगे; चुपचाप पड़े रहो। अपने विषय में तो उन्होंने यह तय कर लिया कि कुछ नहीं कहना है कम से कम आज। पर वे चाहते थे कि माधवी रजनीकान्त को डांटे, पर वहां तो नमक बनाने पर बातचीत शुरू हो गई।

रजनीकान्त कहता जा रहा था—"एक कढ़ाहे में खारा पानी रक्खा जायगा, और उसके नीचे आंच लगाई जायगी, जब पानी सूख जायगा तो कढ़ाहे में नमक रह जायगा।"

माधवी इन बातों को बड़े ध्यान से सुन रही थी, पर सुनते सुनते एकाएक उसे यह सूझा कि इस नमक का क्या होगा, और इससे सरकार को कहां और क्या नुकसान है? रजनीकान्त को जहां तक मालूम था, उसने इन प्रश्नों का उत्तर दिया, पर उसे अधिक तो मालूम था ही नहीं। पर इस कारण उसके मन में कोई सन्देह नहीं था।

१

अगले दिन भी परेश बाबू ने रजनीकान्त से कुछ नहीं कहा। सोचा, कहने की जरूरत नहीं। इस प्रकार कई दिन हो गये। वे समझ रहे थे कि एक दिन जलूस में गया तो कोई बात नहीं। पर एक दिन अकस्मात उनकी मोहनिद्रा टूटी।

पड़ोस की लड़की विमलाने आकर माधवी से कहा—"मौसी, आज रजनी दादा नमक बना रहे हैं।"

माधवी रसोई घरमें व्यस्त थी, दफतर तथा कालेज का टाइम हो रहा था, आठ बजाकर घड़ी का कांटा तेजी से साढ़े आठ की ओर जा रहा था। पर नमक बनाने की बात सुनकर वह ठिठक कर खड़ी हो गई। आंखों में अंधेरा छा गया, पर कुछ लड़खड़ाए, सम्हलकर बोली—" रजनी नमक बना रहा है? नमक बनानेवाले तो गिरफतार हो रहे हैं!"

"हां, हां, वे गिरफतार हो रहे हैं," मौसाजी से कहो न उनको पकड़ लावें। विमला के स्वर में प्रार्थना थी, और थी असीम उत्कंठा।

परेश बाबू पास के कमरे से सुन रहे थे। उनकी भी आंखों में अंधेरा छा गया, इच्छा हुई माधवी के पास खड़े हों, वह माधवी जो गत २४ वर्षों से उनकी सहचरी रही है। पर उधर रज्जू नमक बना रहा था, उससे रोकना, लौटाना था। बिना किसीसे कहे निकल पड़े, और वहां पहुंचे जहां नमक बनाने की तैयारी थी।

सामने ही रजनी दिखाई पड़ा। उन्होंने उसे जाकर कहा—"चलो, तुम्हारी मां बुला रही है।"

रजनीकान्त ने एक बार साथियों की तरफ़, तथा कड़ाहे की तरफ़ देखा, फिर पिता के साथ चल दिया। शायद साथी मुस्करा रहे थे, पर रजनी ने नहीं देखा। फिर सामने पुलीस की गारद थी, उसे देखकर रजनीकान्त के जी में आया कि पिता के साथ न जाए, उसे कुछ ऐसा महसूस हुआ जैसे कुछ गलती कर रहा है, पर वह पिता के पीछे पीछे चला।

घर पहुंचने पर चौखट पर विमला से भेंट हुई, पर न मुस्कराई, न बोली। वह अपने स्वभाव विरुद्ध गंभीर हो रही थी, चुपचाप कतराकर निकल गई। उसीने एक तरह से परेश बाबू को भेजा था, पर वह यह आशा नहीं करती थी कि परेश बाबू उसे लौटा पायेंगे।

घर में घुस कर परेश बाबू अब आज रुक न सके, एकदम बरस पड़े—"हम तो समझे कि तुम प्रोफेसर राना के यहां गये हो, पर तुम तो नमक बनाने चल दिये।..."

रजनीकान्त सिर नीचा किये सुन रहा था, जैसे दोषी हो, पर उसने दृढ़ता के साथ कहा—" बाबूजी आगे नहीं पढ़ूंगा। "

उसके स्वर में कुछ ऐसी बात थी कि परेश बाबू का जोश एकदम थंडा हो गया, वे एकाएक धम्म से कुर्सी पर बैठ गए। फिर एक बार माधवी की ओर देखा, जो इस समय तक वहां आ गई थी। माधवी का चेहरा उतरा हुआ था, बोली—"बेटा ऐसा नहीं कहते, पढ़ोगे नहीं तो क्या करोगे ? "

" देशसेवा करूंगा !"—रजनीकान्त ने कहा।

माधवी के कुछ समझ में नहीं आया कि इसके उत्तर में क्या कहे, वह परेश बाबू का मुंह ताकने लगी। परेश बाबू इस समय तक कुछ सम्हल चुके थे, बोले—"मैं देशसेवा से रोक थोड़े ही रहा हूं। मैं तो कह रहा हूं पढ़ लिख लो फिर देशसेवा करना।"

रजनीकान्त सहसा कुछ बोल न सका, पर उसे जल्दी ही एक नेता की बात याद आ गई, बोला—"शिक्षा इन्तजार कर सकती है, पर स्वराज्य नहीं...।"

परेशबाबू समझ रहे थे कि अब समझाना बेकार है, कड़वेपन के साथ बोले—"यह बात तुम्हारी ही शिक्षा के लिये है, या नेताओं के लड़के लड़कियों के लिये भी है ? उनकी लड़कियां तथा लड़के तो मजे में पढ़ रहे हैं, न वे जेल जा रहे हैं, न वे नमक बना रहे हैं। वे कालेज से निकल कर कहीं असेम्बली के मेम्बर बनेंगे तो कहीं और कुछ। तुम लोग हमेशा वालांटियर ही रहोगे।"

रजनीकान्त ने व्यंग के स्वर में कहा—'बाबूजी कुछ होने के लिए थोड़े ही देश सेवा की जाती है, देश सेवा तो...।'

बीच में ही बात काटते हुए परेश बाबू ने कहा—"हां, हां, सब सुन रखा है। १९२१-२२ में भी लोग जेल गये थे, तुम्हारे जैसे कालेज छोड़ने वाले न घर के रहे न घाट के, मारे मारे फिरे रहे हैं। दूसरे बन गये।"

इस प्रकार परेश बाबू ने बहुत सी बातें कहीं पर रजनीकान्त पर उनका कोई असर नहीं हुआ। जब पिता समझाकर हार गये, तो माता ने समझाया। पर कुछ असर नहीं। अन्त में परेश बाबू ने कहा—"अच्छा इम्तहान के दो महीने रहते हैं, इम्तहान देदो। एक डिग्री तो हो जायगी, यहां तो तुम्हें और आगे पढ़ाने का अरमान था, खैर कम से कम बी. ए. तो हो जाओ।"

पर रजनीकान्त ने नहीं माना। परेश बाबू एक दिन दफतर से आये तो सुना कि रजनीकान्त गिरफ्तार हो गया। इस पर उन्होंने 'हां' कहा न 'ना' ऐसे दिखाया मानो इस खबर से उनका कोई सम्बन्ध ही न हो। पर जब माधवी सामने आई, तो उसे पकड़ कर ऐसे फफक फफक कर रोने लगे कि जैसे कोई बच्चा भी क्या रोता होगा?

अगले दो दिन दोनों रजनीकान्त से मिल आये। लौटकर परेश बाबू ने कहा—"क्या पागल है, दो महीने और रह जाता तो डिग्री मिल जाती। खैर जैसी ईश्वर की इच्छा।..."

ऊपर से तो सब काम ठीक चलने लगा, पर भीतर भीतर परेश बाबू घुलने लगे। और माधवी को भी इस बात का पता नहीं हुआ।

विमला अब बहुधा इसी घर में रहती। कभी परेश बाबू का काम करती, तो कभी माधवी से गप लड़ाती। उनकी बातचीत का विषय रजनीकान्त होता था। जेल जाकर रजनीकान्त विमला की आंखों में देवता हो गया था। वही रोज का रजनीकान्त जिसे वह रोज दिन में सौ बार देखती थी, जिसकी वह कुछ दिन छात्रा भी रह चुकी थी, जो उसे कभी चिढ़ाता था, कभी खिजाता था, वही जेल जाकर एकाएक उसकी आंखों में देवता

हो गया था। उसे बड़ी इच्छा होती थी कि वह जेल में रजनीकान्त से मिल आवे, यह बहुत सरल बात थी। वह माधवी और परेश बाबू के साथ जा सकती थी, पर न मालूम क्यों कैसी लज्जा मालूम होती थी।

एक दिन परेश बाबू ने माधवी से कहा—"यह लड़की बड़ी सुशील है।"

'हां!' माधवी ने कहा।

परेश बाबू ने एकाएक कहा—"अगर रज्जू से शादी हो जाय तो कैसा रहे, जाति पांति, गोत्र में तो कोई बाधा नहीं है।"

" नहीं, कोई बाधा नहीं है, पर छूट कर तो आये। मेजिस्ट्रेट ने तो एक साल की ठोक दी।"—माधवी ने एक आह के साथ बात खतम की।

परेश बाबू इस पहलू पर सोच चुके थे। फिर भी सुनकर उदास हो गये, धीरे धीरे बोले जैसे स्वप्न में बोल रहे हो..."ए...क...सा...ल, एक साल लम्बा अरसा है"

२

माधवी पति को कई दिन से चिंतित देख रही थी। वह चाहती नहीं थी कि वह फिक्र करें। बोली—"क्या है? एक साल देखते देखते बीत जायगा। रज्जू ने कहा नहीं।"

परेश बाबू चौंक कर बोले—"रज्जू ने कहा?"

"हां" तुम्हारे सामने ही तो कहा था।"

"हां, कहा, अब याद पड़ता है..."

कहने को तो उन्होंने कह दिया कि याद पड़ता है, पर उन्हें कुछ याद नहीं आया। वे तो जब जेल में मिलने जाते थे, तो रज्जू को देखते थे, उसकी बातों को वे कम सुनते थे रज्जू को देखकर उनके मन में उदासी छा जाती थी, उनमें एक अजीब जड़ता आ जाती। कहीं अपनी कमजोरी

तथा दुःख का कोई प्रदर्शन न कर डालें, इसी में उनकी सारी शक्ति खर्च हो जाती थी।

माधवी बोली—"और उसने यह भी कहा कि उसे जेल में पूरा एक साल नहीं रहना पड़ेगा, दो महीने पहले छूटेगा।"

"और यह भी तो कहा कि जल्दी स्वराज्य हो जायेगा"—परेश बाबू के स्वर में व्यंग था कि करुणा, समझ में नहीं आया।

माधवी बच्चों की तरह खुश हो गई, बोली—"स्वराज्य कब होगा?"

परेश बाबू कुछ हँसे, बोले—"सन इक्कीस में तो बड़े बड़े कहते थे कि एक साल में स्वराज्य होगा। पर..." कहते कहते वे उठ गये।

२

विमला ने एक दिन माधवी से कहा—"मौसी अब तो औरतें भी जेल जा रही हैं।"

माधवी बोली—"कुछ समझ में नहीं आता बेटी, पहले तो सिर्फ बदमाश ही जेल जाया करते थे, पर अब तो सभी जाने लगे। औरतें जेल जायेंगी इसमें आश्चर्य क्या है?"

विमला ने शायद माधवी की बात सुनी नहीं, वह कहती गई "अच्छा जेल में तो सबको इकट्ठा रखते होंगे?"

माधवी को इस सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं था। उसने कहा—"मुझे मालूम नहीं बेटी, रज्जू तो बहुत दुबला हो गया है। सुना है वहां मिट्टी मिली रोटी मिलती है," माधवी ने एक लम्बी सांस ली, और उसकी बड़ी बड़ी आंखें छलछला आई।

विमला अपने मन का आवेग थमाते हुए बोली—"मौसी जेल चलो, तो उनके साथ रहोगी।"

माधवी की आंखें चमक उठीं, पर एक मुहूर्त के लिये। बोली—"इनका क्या होगा ?"

"किनका"

"तुम्हारे मौसाजी का।"

विमला हँसकर बोली—"वे कोई बच्चे थोड़े हैं।"

विमला के इस कथन पर माधवी को कुछ तसल्ली नहीं हुई।

शाम के समय विमला और माधवी मुहल्ले की अन्य कई स्त्रियों के साथ नमक बनाना देखने के लिये गईं। कांग्रेस मैदान में अपार भीड़ थी। नरमुंड ही नरमुंड, और इन नरमुंडों के बीच कुछ लाल पगड़ियां और संगीने भी दिखाई पड़ रही थीं। स्त्रियों को देखकर जनता ने सहज ही इन लोगों को रास्ता छोड़ दिया, और ये उस जगह पहुँच गईं जहां नमक बनने की तैयारी थी। एक बड़े से चूल्हे पर एक बहुत बड़ी कढ़ाई रखी हुई थी। उसमें पानी था। चूल्हे में लकड़ियां फूस आदि रखी हुई थीं। पर अभी आग नहीं जलाई गई थी। एक दिया सलाई की जरूरत थी।

वह दिया सलाई भी जलाकर लगा दी गई, और बड़े जोर से लपटें दौड़ पड़ीं। साम्राज्यवाद की पुलिस चौकन्नी हो गई। कढ़ाई की चारों तरफ कई स्त्रियां खड़ी थीं, उनके चेहरों पर दृढ़ता थी। कोमलता की ज़मीन पर दृढ़ता की स्वर्णपत्री।

विमला, माधवी, आदि उनसे दूर खड़ी थी। इतने में भीड़ चीरती हुई पुलिस की टुकड़ी आई। सब का ध्यान उस ओर गया। इन लोगों के आते ही भीड़ ने बड़े जोर का जयकार किया। आगे बढ़कर इन लोगों ने उन स्त्रियों को घेर लिया, जो कढ़ाई के पास खड़ी थीं। माधवी ने आश्चर्य से देखा कि इन घिरी हुई स्त्रियों में विमला भी थी। वह उसकी तरफ देख कर हँस रही थी। माधवी को बड़ा गुस्सा आया। यों तो वह पर्दानशीन ही थी, पर विमला को अपने साथ लाने की जिम्मेवारी का ख्याल कर वह आगे बढ़ी और पुलिस इन्स्पेक्टर से कुछ बोली। पता

नहीं उनमें क्या बात हुई ? पर नतीजा यह हुआ कि माधवी भी हिरासत में ले ली गई।

माधवी तथा विमला को तीन तीन महीने की सादी कैद हुई। वे औरत-जेल में रखी गईं। परेश बाबू मिलने आये, तो बहुत परेशान थे। माधवी ने बताया कि वह कैसे गिरफ्तार हो गई, पर परेश बाबू की परेशानी दूर नहीं हुई। वे उस दिन से बीमार रहने लगे, और सात दिन में ही परलोक सिधार गये। माधवी फौरन छोड़ दी गई, पर न तो विमला ही छूटी न रजनीकान्त।

विमला के घर वालों ने बहुतेरा जोर डाला कि वह माफी मांगे, पर कुछ सोच कर वह किसी तरह राजी न हुई। जब रजनीकान्त के बापके मरने की खबर आई और माधवी अधमरी होकर छूट गई, तब उसने एक दफा सोचा था कि कुछ नहीं तो उसके साथ रह कर उनको सान्त्वना देने के लिये माफी मांग कर चली जाय, पर रजनीकान्त की बात याद कर उसने माफी नहीं मांगी। वे कभी इसका समर्थन नहीं करेंगे। शायद घृणा करने लगें। अरे बाप रे, ऐसा काम कभी नहीं किया जा सकता। पर उस दिन से जेल खलने लगी।

जब विमला छूट कर घर आई, तो वह सब से पहले माधवी से मिलने गई।

माधवी इन्हीं दो महीनों में जैसे बूढ़ी हो गई थी। पति मर गये, बेटा जेल में। विमला को देख कर वह फूट फूट कर रोने लगी। बड़ी देर में शान्त हुई। विमला ने उसे समझाया,—"रोओ मत मौसी, अब देर नहीं है, स्वराज्य हुआ ही चाहता है।"

पर उनके मनमें विश्वास की आग धीमी पड़ गई थी। जैसे तैसे उन्हें समझा कर विमला घर गई तो वहां शोर मचा हुआ था। उसे देखते ही मां बाप, भाई भौजाई, सब उस पर टूट पड़े, मां बोली—"गई थी वहां कलमुँही मुँह काला करने। उसको भी क्या काम है ? अपने पति को

खा गई, बेटे को जेल भेज दिया, पड़ोसियों के लड़के लड़कियों पर भी अपना जादू चलाया। चल बैठ। अब जो तूने घर से पैर भी बाहर निकाला तो..."

उसी दिन से उनकी शादी की तैयारी भी होने लगी। जब शादी पक्की हो गई, तो विमला चोरी से माधवी के पास पहुंची, और बिना कुछ कहे सुने, उसके पैरों पर गिरपड़ी। फिर सारी बात सुनाई अन्त में बोली—"बचाओ...मुझे बचाओ।"

पैर छुड़ा कर माधवी बोली—"इस में बचाने की बात क्या है? शादी तो एक दिन होगी ही। शादी नहीं करोगी तो क्या करोगी?'

"देशसेवा करूंगी!"—विमला बोली।

"शादी करके भी देशसेवा कर सकती हो।"

"तुम समझती नहीं हो मौसी, वहां देशसेवा कहां?"

अन्त में हारकर विमला बोली—"तो मौसी तुम मुझे नहीं बचाओगी; मैं बड़ी आशाएं लेकर आई थी।"

"कैसे बचाऊं?"—माधवी बोली।

"मुझे यहीं पड़ी रहने दो, तुम्हारी सेवा करूंगी।"

"चल पगली, यह कहीं हो सकता है। लोग क्या कहेंगे?"

"तो ऐसे कर लेना कि लोग कुछ न कह सकें। मैं तुम्हारी सेवा करूंगी।"

"नहीं बेटी, ऐसा नहीं हो सकता।"—माधवी ने दृढ़ता से कहा।

तब विमला उठी, गिड़गिड़ा कर बोली—"वे होते तो बचा लेते, वे कभी न इन्कार करते। वे..."

विमला की शादी हो गई। सुहागरात में उसके रोने को कौन सुनता।

४

रजनीकान्त छूटा...। उसे जब मालूम हुआ। पिता की मृत्यु की घात तो पहले से मालूम थी, पर विमला की शादी की बात घर आने पर मालूम हुई। माधवी बोली—"बेटा, अब वे तो गये, तू भी शादी कर ले, तो घर कुछ बसे। तेरी बढ़ती देख वे स्वर्ग में सुखी होंगे।"

पर रजनीकान्त ने कहा—"नहीं, मैं देशसेवा करूंगा।"

फिर तो रजनीकांत गांव गांव घूमने लगा। कभी छटे सातवें दिन आता, दो एक घंटे रहता, फिर चल देता। गांधी इरविन पैक्ट हुआ भी, टूट भी गया। रजनीकान्त फिर गिरफ्तार हो गया। सब से अन्त में १९३४ में वह छूटा।

रजनीकान्त ने देखा मां का हाल बुरा है, नौकरी की चेष्टा करने लगा। पर जहां जाता, वहीं डिग्री पूछी जाती, नौकरी नहीं मिली। कांग्रेसी म्युनिसिपल मेम्बर के पास गया, तो वे बोले,—'मैं तो असूलन किसी कांग्रेसी को नहीं रखता, कामचोर होते हैं।'

इसी तरह धक्के खाता रहा। कहीं किसी की बही लिख देता तो कहीं सौदागरी पत्र व्यवहार करता। दो पेट, भर ही जाते। एक दिन विमला आई, रजनीकान्त घर में नहीं था, सब हाल सुनकर बोली—"कहो न उनसे, लालाजी के पास दर्खास्त दें, डिग्री नहीं तो क्या, वे डिग्री वालों को पढ़ा सकते हैं।"

रजनीकान्त ने आकर मां से सुना तो बोला—"छिः, वह अपने रुपये दिखाने आई थी। कभी नहीं..."

रजनीकान्त इसी प्रकार लुढ़कता पुढ़कता जीता रहा। १९४२ में जब, 'करो या मरो' का नारा दिया गया, तो वह फिर कूद पड़ा। मां से कह गया, मकान बेचकर काम चलाओ, स्वराज्य होगा तो सब कुछ होगा।

पर मकान बेचने की नौबत नहीं आई। रजनीकान्त की फरारी के

कारण मकान जब्त कर लिया गया। माधवी ने एक दूर के रिश्तेदार के यहां जाकर आश्रय लिया, पर एक महीने के अन्दर ही वह चल बसी। उसे पुत्र के हाथ की लकड़ी भी नसीब नहीं हुई।

रजनीकान्त ने सारे इलाके में सरकारी राज्य ख़तम सा कर दिया। प्रान्त के सबसे प्रधान नेता ने कहा—"किसी स्वतन्त्र देश में तुम सेनापति होते...हां मैं सच कहता हूं।"

रजनीकान्त ने और भी जोर से काम किया। पुलिस का नातका बन्द कर दिया। पर एक बार किसी की बेईमानी से गिरफतार हो गया। फिर तो वह १९४६ तक जेल में रहा। कांग्रेस मंत्रीमंडल ने ही छोड़ा। फिर रजनीकान्त कहीं बही लिखता, तो कहीं कुछ कर के दो रुपये कमा लेता। अब तो मां भी नहीं थी, बस एक पेट था।

जब स्वराज्य हो गया तो रजनीकान्त ने सोचा, चलो तब और तरीके से देशसेवा की, अब और तरीके से करूंगा। सरकारी नौकरी करूं। पर जहां भी गया, कोई टेस्टिमोनियल है, आपने क्या पास किया? यह सुन पड़ा।

अन्त में ऊब कर रजनीकान्त प्रधान नेता से, जो अब प्रधान मंत्री हो चुके थे, मिला। बड़ी देर में वहां पहुंच पाया। सब परिस्थिति समझाई, तो प्रधान मन्त्री बोले—"भाई बात तो ठीक है, हम किसी के साथ पक्ष-पात नहीं कर सकते।"

"तो मुझे सेना में ही कोई जगह दीजिये"...रजनीकान्त ने उस बात को याद कर कहा कि तुम किसी स्वतंत्र देश में होते, तो सेनापति होते।

प्रधान मंत्री ने कलाई की घड़ी में देखकर सिर खुजलाते हुए कहा—"उसमें भी बड़े रेगुलेशन हैं।"

"हों, तो हों......"

"हां तो तुम एक सैनिक बनोगे, पर तुम्हारी उम्र?"

"जी ३८ साल होगी।"

"फिर मुशकिल है। पर दर्खास्त दो। लेकिन हां तुम कहीं गरम विचार के तो नहीं हो!"

"आप मुझे जानते हैं।"

"अच्छा तो दर्खास्त देना। "धन्यवाद" पर इस पर भी रजनीकान्त नहीं उठा, तो बगल से सामरिक पोशाक में एक आदमी आया। यह वही था जिसने उसे १९४३ में गिरफतार किया था, गिरफतारी के समय उसने इसके सीने पर पिस्तौल तान दी थी। प्रधान मंत्री का बाड़ीगार्ड था। उसने आकर रजनीकान्त से कहा—"चलिये।"

रजनीकान्त इस व्यक्ति को प्रधान मंत्री का अंग रक्षक देखकर, वहां से निकल कर एक पेड़ के नीचे बैठ गया। मन पर भारी धक्का लगा। उसका शरीर भारी हो रहा था। सिर में दर्द था। उसी हालत में उसे बुखार आया, और उसे लोग अस्पताल पहुंचा आये।

कई दिन बाद जब रजनीकान्त ने आंखें खोली, तो सामने विमला को देखा। धीरे धीरे चेतना बढ़ती गई। विमला ने सब कह सुनाया, कैसे वह उसे अस्पताल से उठा लाई, बोली— "डाक्टर कहते हैं तुम्हारे दिल पर कोई सख्त सदमा पहुंचा, इसी से तुम बीमार हो गए। क्या सदमा था?" वह शरारत से मुस्कराई, बोली—"कोई मिल गई क्या?"

तब धीरे धीरे रजनीकान्त ने इधर के सारे संघर्षों की बातें सुनाई, फिर बोला—"मुझे सचमुच उस समय बड़ा सदमा लगा जब मैंने देखा हमारे गिरफतार करने वाले, हम पर जुल्म करने वाले हमारे काका बने बैठे हैं, और यह सब हमारे नेताओं की जान में हो रहा है। क्या हमने इसलिये सारी लड़ाई लड़ी थी कि हम पर उन्हीं लोगों का राज्य रहे"... इस प्रकार कहते कहते वह उत्तेजित होकर बैठ गया।

विमला ने मना किया, पर वह कहता गया—"पिताजी ने ठीक कहा

था, नेता का बेटा नेता, नेता के दामाद नेता, तुम लोग तो तोप की खुराक हो।"

वह कहता ही गया। उसका पितृशोक मातृशोक आज जैसे फिर से नया हो गया। वह रोने लगा। विमला ने रोका पर वह बोलता गया, —"सुनो विमला, हम भी कहीं पुलिस में होते, नेताओं के सिर लट्ठ बजाते होते, तो इस में तुम्हें भी न खोता। विमला, काश हम लोग जीवन को फिर से शुरु कर सकते, काश..." पर एकाएक बिस्तरे पर लेटकर वह गिड़गिड़ाकर बोला—"पर यह हो नहीं सकता। सब से दुखःद बात तो यह है कि जो हम कर चुके उसे मिटा नहीं सकते..."

वह शान्त हो गया। स्थिर, निश्चल विमला दौड़ी, पर डाक्टर आने के पहले ही रजनीकान्त मर चुका था। उसकी आंखों में आश्चर्य था, घृणा नहीं, मानों वह अन्त तक यही सोच रहा हो; यह कैसे हो गया। विमला उसके शव से लिपट कर फूट फूट कर रोने लगी। किसी ने उसे मनाया नहीं। बाहर कोई लाउडस्पीकर से ऐलान कर रहा था— "भाइयो! फिर १५ अगस्त आ गया, उसे धूमधाम से मनाइये।..."

न मालूम क्या हुआ? विमला आंधी की तरह शव को छोड़कर उठी, और उसने सड़क की तरफ का दरवाजा बन्दकर लिया, और वह फूट फूट कर रोने लगी।

पन्द्रह रुपये बारह आने

महंत गोकुलदास हरद्वार के पास के एक प्रसिद्ध मठ के महंत थे। जमींदारी से तो उन्हें लाखों की आमदनी थी ही, पर धार्मिक आमदनी भी खूब थी। महंतजी साधुओं की रीति के अनुसार गेरुये रंग के कपड़े पहनते थे। यहां तक कि उनकी मसहरी और छाता भी गेरुये रंग के थे। पर उनके सभी वस्त्र बढ़िया से बढ़िया रेशम के होते थे। शरीर से वे तगड़े थे। चौड़ा सीना, तगड़ा भुजदंड, मस्त चाल! उनको देखने से पता लगता था, कि वे सुख में पले थे, और सुख के अभ्यस्त थे। क्यों न हो, वे हजारों के ऐहिक तथा पारलौकिक भाग्य विधाता जो ठहरे!

और महंतों की तरह गोकुलदास की भी बदनामी थी। पर धनियों का बदनामी से बिगड़ता ही क्या है? वे जब तक हरद्वार में रहते थे, तब तक अपने मठ में ही रहते थे। मठ कई बीघे जमीन में बसा था। उसमें चेलों के रुप में कोई पचास जवान रहते थे। सभी गेरुआ वस्त्रधारी, और सभी मुस्टंड। बीस पचीस गायें और कुछ भैंसे भी थीं। चेले इनका दूध पीते, डंड बैठक लगाते, और दोनों वक्त झांझ बजाकर बड़े जोर से

ठाकुरजी की आरती करते।

प्रत्येक चेले का काम बंधा हुआ था। कोई गाय भैंसों की देख भाल करता, कोई लगान वसूल करता, कोई सौदा सुल्फ लाता।

नित्य सवेरे महंतजी का दरबार लगता था।

आज भी दरबार लगा था। कई किसान लगान न देने के जुर्म में महंतजी के सामने पेश किये गये। महंतजी ने प्रत्येक किसान के सम्बन्ध में अलग अलग पता लगाया, कि किस पर कितना लगान बाकी है, किसी पर दस रुपया बाकी था, तो किसी पर था दो ही रुपया। अधिक से अधिक कुल पचीस तीस बाकी था। महंतजी ने सबकी बातें सुन लीं। "फिर कहा—तुम लोग लगान क्यों नहीं देते, जी ? आजकल जमींदारों के विरुद्ध विद्रोह करने का एक रिवाज चल पड़ा है। पर तुम्हारे तो जमींदार स्वयं ठाकुरजी हैं। इनकी एक पाई भी मारोगे, तो सीधे नरक में जाओगे!"

मैकू नामक एक किसान ने हाथ जोड़ कर कहा—"सरकार, आप माफ भी तो कर सकते हैं!"

महंतजी ठठा कर हँस पड़े। फिर बोले—"वाह! मुझे क्या हक है? तुम तो...उलटे मुझे ही नरक में झोंकना चाहते हो। मैं माफ कर दूं, और तुम्हारे बदले नरक भोगूं, यह नहीं हो सकता!" कहकर, महंतजी सब किसानों की तरफ ताक कर, हहा कर हँसे। यह मानो सिगनल था। लट्ठधारी चेले किसानों को वहां से ले गये।

महंतजी के इलाके में जो किसान लगान नहीं देते थे, बेगार नहीं करते थे, या किसी और तरीके से चेलों के क्रोध भाजन हो जाते थे, तो उन्हें चेले पकड़ कर मठ में ले आते थे। यद्यपि ये चेले सरकारी नौकर नहीं थे, न पुलिसवाले थे, फिर भी सरकार और महंतजी में भीतर ही भीतर न मालूम क्या तय था, कि इस प्रकार बिलकुल गैरकानूनी तरीके से चेले लोगों को गिरफ्तार कर लेते थे, पर कोई कुछ नहीं कहता था।

और किसान? वे तो हमेशा से अपने ऊपर सब के अधिकार मानते चले आये हैं। और महंतजी का अधिकार औरों से कुछ अधिक ही था, क्योंकि वे धर्मगुरु और महात्मा भी तो थे।

चेले किसानों को मठ के अन्दर तरह तरह के कामों में लगा देते थे। जब तक उनकी तरफ से कोई आकर लगान चुकता नहीं कर जाता था, तब तक उनसे जबर्दस्ती ठाकुरजी की सेवा कराई जाती थी। ठाकुरजी तो पीतल के थे। सो उनकी क्या सेवा होती? सेवा होती थी वास्तव में चेलों की और महंतजी की गाय भैंसों आदि की।

एक चेला, जिसने अपना नाम न मालूम क्यों शत्रुघ्नदास रख रखा था, बहुत तैयार और सजीला था। इसकी उम्र लगभग बाईस साल की थी। महंतजी का यह विशेष कोई कृपा-पात्र था। और चूंकि वह महंतजी का कृपा-पात्र था इसलिये उसके सिपुर्द विशेष कोई काम नहीं था। वह सवेरे उठकर दातून करता, फिर कसरत में जुट जाता। देर तक डंडबैठक करता, फिर खूब छक कर दूध पीता। इसे मालिश का भी बड़ा शौक था। जब भी कोई आदमी मिल जाता, तो वह मालिश अवश्य कराता था।

आज जो इसने इन किसानों में मैकू को देखा, तो उसका जी ललचा गया, क्योंकि मैकू खासा तगड़ा आदमी था। जिस समय वह कसरत करके, पसीना सुखाकर, दूध पीने की तैयारी कर रहा था, उस समय महंतजी के दरबार से ये किसान लौट रहे थे। शत्रुघ्नदास ने अन्य चेलों से कहकर मैकू को अलग करा लिया, और उसे अपने पास बुलाकर कहा—"तूने कभी कसरत किया है?"

"नहीं, सरकार! मैं कसरत वसरत क्या जानूं? कसरत तो बड़े आदमियों के लिये है। हम लोगों को तो खेत से ही फुरसत नहीं मिलती।"

शत्रुघ्नदास ने अपनी लंगोट को कसते हुए कहा—"पर मालिश करना तो जानता ही होगा" कहकर, चेहरे को अप्रसन्न बना लिया, कि न मालूम कैसा उत्तर मिले।

मैकू ने कहा—"नहीं सरकार, मालिश करना हम क्या जानें। हां कभी कभी घोड़ी को मला है।"

शत्रुघ्नदास ने इस उत्तर में कुछ व्यंग का पुट पाया। बोला—"चल चल, कपड़े उतार। यहां बड़े बड़े उजड्डों को मालिश सिखा दी। मैं दूध पीता हूं। तब तक तू, तैयार हो जा।"

मैकू जानता था, कि यहां तर्क करना व्यर्थ है। कई पुश्त से किसानों का यही स्वभाव हो चुका है, कि वे लोगों के हुकुम मानें। उसने कपड़ा उतार डाला। कपड़ा था ही क्या, एक मैली कुचैली बंडी थी और एक वैसी ही धोती। सो उसने बंडी उतार डाली, और धोती कुछ चढ़ाकर बांध ली। शत्रुघ्नदास ने इस बीच में एक लोटा मलाईदार दूध पी लिया। फिर डकार लेकर, एक दरी या ऐसी ही किसी चीज पर लेट कर, कहा—"इधर आ। ले।" पास ही कटोरी में कडुवा तेल भरा हुआ था। उसकी तरफ इशारा करते हुए कहा—"पहले रान की मालिश कर।"

पर मैकू को मालिश तो आती ही नहीं थी। वह ठीक ठीक मालिश न कर सका। तब शत्रुघ्नदास ने उठ कर मैकू को मालिश का तरीका बतलाया। उसने मैकू से लेटने को कहा। और जब मैकू ने इस में कुछ देर की, तो उसने उसे उठाकर उसे तेलकी दरी पर पटक दिया, और फिर तेल लेकर रान में पहले धीरे धीरे और फिर इतने, जोर से तेल रगड़ने लगा, कि मैकू कराहने लगा। इसकी कुछ परवाह न कर, शत्रुघ्नदास ने दो मिनट तक रगड़ना जारी रखा। फिर उसने मैकू से पूछा—"अब मालिश समझ में आयी ?"

मैकू की समझ में विशेष नहीं आया था। पर वह यह समझ गया था कि किसी तरह अपनी रान को साधुजी की मालिश से बचाना चाहिये। इसी लिये उसने कहा — " हां समझ में आगया। छोड़िये। " कह कर उसने फिर कराहना शुरू कर दिया।

शत्रुघ्नदास ने तब उसे छोड़ दिया। इस प्रकार मैकू को मालिश

सिखायी गयी।

दूसरे किसान मैकू से अधिक भाग्यवान साबित हुए। उन्हें ऐसे काम दिये गये जो वे जानते थे। किसी को जमीन लीपने के लिये, तो किसी को गाय, बैलों को सानी पानी देने के लिये नियुक्त किया गया। दिनभर यही काम हो रहा। बीच में एक बार उन्हें कुछ खाने को दिया गया। पेट भरने का कोई सवाल नहीं था। चार चार फुलके दे दिये गये। एकाध किसान ने बेवकूफी से और फुलके मांगा, तो भंडारे के 'इन्चार्ज' हरिदास ने कहा— "अरे, यहां भोजन थोड़े ही मिलता है। यह तो ठाकुरजी का प्रसाद है, पेट भर के खाने के लिये थोड़े ही है।"

इस प्रकार किसान दिन भर भूखे ही से रहे।

अगले दिन वे महंतजी के सामने फिर पेश हुए। इस बीच में सभी के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगी थीं। भूख के मारे सब बेचैन हो रहे थे। किसानों ने एक स्वर से कहा, कि वे लगान देंगे, उन्हें छोड़ दिया जाय। पर गोकुलदास ने झुंझला कर कहा — "अरे, बाबा, छोड़ने का अधिकार मेरे हाथ में थोड़े ही है। जाओ ठाकुरजी से कहो न। अगर छोड़ दें, तो मुझे आपत्ति क्या है? हम तो बस, उनका हुक्म बजाने के लिये हैं। मैं कुछ नहीं कर सकता।" और महंतजी हहा कर हंसे।

फौरन चेले उन्हें पीछे की तरफ से ले गये, और बिना खिलायेपिलाये काम में लगा दिया। सरकारी जेल में तो फिर भी दोनों जून कुछ खाने को मिल जाता है, पर यहां तो केवल ठाकुरजी का प्रसाद मिलता है। वह किसी को भर पेट नहीं मिल सकता था। पर काम यानी ठाकुरजी की सेवा, तो सब को पूरा पूरा ही करना पड़ता था।

'सेवा करे, सो मेवा खाय,' महन्तजी इस वाक्य का बहुत उपयोग करते थे। वे अपने चेलों से इस वाक्य को कहा करते थे, और चेले आम व्यक्तियों से कहा करते थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस वाक्य के पूर्वार्ध का यहां अक्षरशः पालन कराया जाता था। यहां सेवा

तो खूब करायी जाती थी, पर मेवा तो दूर रही पेट भर कर खाने को भी नहीं दिया जाता था। सनातन नियम के अनुसार ठाकुरजी के राज्य में सेवा कोई और करता था, और मेवा कोई और खाता था।

किसानों का एक दल छुटकारा पाकर चला जाता, तो दूसरा दल आ जाता। इस प्रकार ठाकुरजी का काम हमेशा होता रहता था। मैकू जिन किसानों के साथ आया था, वे तो छूट कर चले गये। पर मैकू नहीं छूटा। उसके घर में केवल उसकी स्त्री और एक छोटी बच्ची थी। कुल दो बीघा ज़मीन थी। किसी तरह पूरा नहीं पड़ता था। पूरा लगान कहां से देता?

महंतजी ने जब कई दिन तक लगातार मैकू को देखा, तो उससे प्रश्न किया — "अजी, तुमको ठाकुरजी की सेवा ही अच्छी लगती है क्या? घर नहीं जाओगे?"

आठ दस दिन में ही मैकू की हालत बुरी हो गयी थी। केवल प्रसाद पर गुजारा करने के कारण उसके चेहरे पर जहां तहां झुर्रियां पड़ गयी थीं। हर समय भूख ही लगी रहती थी। महंतजी के प्रश्न पर उसने करीब करीब रो कर कहा — "सरकार, अब मुझे छोड़ दिया जाय। बहुत दिन हो गये।"

महन्तजी ने ठहाका कर हंस दिया। बोले — "अरे, पागल छोड़ देना मेरे अधिकार में होता, तो तू कब का चला जाता। तू तो ठाकुरजी के रुपये मारे बैठा है। मैं तुझे कैसे छोड़ दूं?"

चेले हाथ पकड़कर मैकू को ले जाने लगे। इतने में महन्तजी की न मालूम क्या कृपा हो गयी। बोले — "ठहरो।" फिर मैकू को सम्बोधन करते हुए बोले ... "तेरे घर में कोई नहीं है क्या?"

मैकू ने मकान का सारा हाल बताया। महन्तजी ने कहा — "अच्छा यह बात है, तो तू अपनी घरवाली को यहां बुला ले। हमारे यहां मठ के बाहर कुछ मकान बने हुए हैं। उनमें बहुतसी औरतें रहती हैं। वे हमारे

यहां झाड़ू बुहारा करती हैं। वह भी पड़ी रहेगी उन्हीं में।"

मैकू ने कहा — "पर सरकार, हमारी जमीन ?"

महंतजी हहा कर हँस पड़े। बोले — "यही तो गलती है। जमीन तो ठाकुरजी की है। तुमने जब तक ठीक से सेवा की, तब तक तुम्हारे पास रही, अब तुम सेवा नहीं कर पा रहे हो, तो अब वह दूसरे को मिलेगी।" फिर दार्शनिकता छांठते हुए बोले — "जमीन न तो किसी की कभी हुई है, और न कभी किसी की होगी, गोकि उसे सभी अपनी समझते रहे हैं।" और वे फिर हहा कर हँसे।

चेले मैकू को वहां से ले गये। मैकू दो तीन दिन के बाद ही शत्रुघ्नदास की मालिश से अलग किया जा चुका था। बात यह थी कि कमजोर पड़ जाने के कारण उससे मालिश नहीं होती थी। अब वह घास छिलने आदि में लगा रहता था।

कैसे क्या हुवा, पता नहीं। पर दिन छिपे पर दो तीन चेलों ने मैकू से कहा — "चल!"

करीब करीब घसीटते हुए वे मैकू को मठ से बाहर ले चले। मठ दीवार से घिरा हुवा था, और उसके अन्दर कई इमारतें थीं, बागबगीचा था और ठाकुरजी का मन्दिर था। मैकू ने कई बार भूख के मारे यह सोचा था कि वह यहां से भाग जाय, पर दीवारों को देख कर उसकी हिम्मत पस्त हो जाती थी। फाटक से निकलने का कोई तरीका नहीं था, क्यों कि वहां तो एक बन्दूकधारी साधु रहता था, और किसी को भी यों निकलने नहीं देता था।

आज मैकू को करीब एक महीना बाद इस कैद से निकलने में बड़ी प्रसन्नता अनुभव हुई, पर साथ में जो तीन मुस्टंड थे, उनको देख कर उसकी खुशी कुछ हल्की हो गयी। एक स्टेशन रेल से जा कर वे कुछ देर बाद मैकू के घर पहुंच गये। सबसे पहले मैकू को, जो खबर अपनी स्त्री से मिली, वह यह थी कि मैकू की जमीन दूसरे को दे दी गई है। तो महन्तजी

ने पहले जमीन दूसरे को दे दी, और फिर मैकू को डराया। उसके सिर पर मानो वज्र गिरा। पर उसके लिये अब इसके सिवा कोई चारा नहीं था, कि वह स्त्री सहित मठ चला जावे।

उसने अपनी स्त्री रमा से ऐसा ही कहा।

रमा ने सारी बाते सुन कर कहा—"जमीन गई, तो गई। हमें वहां जाने की क्या जरूरत है?"

महंतजी के चेले खुफियों की तरह वहीं डटे हुए थे। बोले—"तू जाय, चाहे न जाय, मैकू तो ठाकुरजी की सेवा करेगा ही।"

मैकू जानता था, कि वह कैद है। बोला—"हां, और क्या? ठाकुरजी ही दो रोटी दे देंगे, तो वहीं खा कर काम चलाऊंगा।"

अन्त में रमा को अपनी बच्ची सहित अगले दिन उन लोगों के साथ रवाना हो जाना पड़ा। मैकू ने सोचा, 'जमीन गयी, तो अब मजदूरी करेंगे। मजदूरी जैसे औरों की, तैसे महंतजी की ही सही। फिर यदि भाग्य ने साथ दिया, तो फिर सब ठीक हो जायगा। उसने भाग्य के सामने आत्म समर्पण कर दिया। उसे बस डर था, तो यही, कि उसे कहीं पेट भर खाने को न मिला, तो क्या होगा? पर इस बीच मैकू कुछ चालाक हो गया था, और प्रसाद के चार फुलकों के अलावा भी वह चेलों की खुशामद करके, कुछ लड्डू वगैरा पा जाया करता था। फिर जब मजबूरी ही थी तो और क्या करता?

जब ये लोग मठ में पहुंचे, तो मैकू को तो भीतर भेज दिया गया, और उसकी स्त्री तथा बच्ची एक बूढ़ी औरत के सिपुर्द कर दी गयी। मैकू ने इस पर आश्चर्य प्रकट किया, तो चेलों ने कहा—"किसी स्त्री को मठ के अन्दर रहने का हुक्म नहीं है।"

इसके बाद उसे और कुछ कहने नहीं दिया गया। दो तीन दिनों तक मैकू को जब रमा से मिलने की आज्ञा नहीं मिली, तो वह घबरा गया।

उसने चेलों से पूछा, तो उन लोगों ने कोई उत्तर नहीं दिया। अब वह महंतजी के सामने भी रोज पेश नहीं होता था, इसलिये उनसे भी कुछ कह नहीं सकता था।

उसने घबराहट में मौका पाकर, शत्रुघ्नदास से पूछा—"बाबाजी, अब क्या हो?"

शत्रुघ्नदास में चाहे और कोई बुराई हो, पर वह कसरत तथा शरीर का शौकीन होने के कारण स्त्रीयों से बचता था। यही नहीं, वह उन गुरु भाइयों को भी बुरी निगाह से देखता था, जो मठ के बाहर अनैतिक जीवन व्यतीत करते थे। उसे ऐसे लोगों से चिढ़ थी। बोला—"बाबा, मैं तो इन बातों को नहीं समझता। तुम अपनी स्त्री को यहां क्यों लाये? यहां तो सब तरह के आदमी हैं।"

मैकू ने कहा—"महंतजी ने हुक्म दिया था।"

शत्रुघ्नदास को सब बातें मालूम थीं। उसे ऐसी बातों से चिढ़ भी थी। पर वह अपनी सहजबुद्धि से समझता था, कि यह कसरत और दूध मलाई सब महंतजी की बदौलत है, नहीं तो वह कहीं मजदूरी करता होता। इसलिये वह महंतजी की बुराई सुन कर चौंका। फिर बिगड़ कर कहा—"चुप रह, लंठ पानी में रहे, और मगर से बैर करे!"

मैकू इसलिये और भी घबरा रहा था, कि अभी तक उसकी पूरी खुराक नहीं बंधी थी। प्रसाद और इधर उधर जो कुछ मांग मूंग कर पा जाता था, उसी पर गुजारा करता था।

एक दिन कहीं महंतजी टहलते हुए मिल गये, तो उसने एक सांस में अपनी स्त्री की बात तथा चार फुलकों पर भूखों मरने की बात कही। चेले ताकते रह गये, और उसने कह दिया।

महंतजी ने स्त्री वाली बात पर तो कुछ नहीं कहा, पर फुलके वाली बात पर हुकुम दिया, कि "इसे पूरा खाना दो।" और फिर रहस्यजनक

भाव से कहा—"इसके अब कपड़े बदल दो !"

अगले दिन जब सबेरे मैकू काम पर चला, तो उसे चेलों ने काम करने नहीं दिया। थोड़ी देर में नाई आया, और उसकी दाढ़ी मूंछ तथा सिर के बाल एकदम मुड़ा दिये गये, और उसे चेलों की तरह गेरुये रंग के कपड़े दिये गये। फिर उसे न मालूम क्या मंत्र पढ़वाया गया। उसके बाद उसे भर पेट भोजन दिया गया। बहुत दिन बाद पेट भर खाकर मैकू को बहुत संतोष हुआ। पर स्त्री की बात वह भूल नहीं सका।

एक दिन फिर महंतजी उधर से निकले, तो मैकू ने स्त्री की बात कही। इस पर महंतजी हमेशा से अधिक जोर से ठहा कर हँसे। बोले —"तू तो बड़ा बेवकूफ है। गेरुये वस्त्र पहन लिये। अब तेरी स्त्री तेरी कौन होती है? तू तो अब रामजी के आश्रय में आ गया। तेरा अब कोई नहीं रहा।"

महंतजी ने उस दिन यह हुकुम दिया, कि भक्त दास (मैकू का नया नाम) को रोज सबेरे दो घंटे और संध्या समय दो घंटे भजन सिखाया जायें। भक्तदास की कोई सुनाई नहीं हुई। वह अब समझा कि गेरुये वस्त्र का क्या रहस्य था। पर कर ही क्या सकता था? सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध सरकार से अपील हो सकती थी, पर महंत जी के विरुद्ध तो एक ठाकुरजी से ही अपील हो सकती थी। उसकी पुकार सुनने वाला कोई न था।

फिर भी उसने उस दिन मन्दिर में जाकर रामजी को बहुत पुकारा। सामने ही ठाकुरजी थे अर्थात् रामचन्द्रजी की मूर्ति थी। एक बगल में थीं सीता, दूसरी बगल में लच्मण और पीछे महावीर जी खड़े थे। मैकू उर्फ भक्तदास ने रामजी से, सीताजी से, लच्मण से महावीर से, बारी बारी से सबसे अपनी बात कही। फिर उसने कहा—"दीनबंधु, मैं बिलकुल साधु होना नहीं चाहता। ये साधु दुनिया में सबसे बड़े कुकर्मी हैं। महंत तो मानो गुंडों का सिरताज है। हे प्रभु, यह सब तुम्हारे नाम पर

हो रहा है !......"

इस प्रकार घंटो प्रार्थना करने पर भी, रामजी ने सुधि नहीं ली।

२

उधर रमा पर जो कुछ बीता, उसका कुछ ब्योरा यों है......

रमा अपने पति तथा उन साधुओं के साथ मठ के विशाल फाटक तक गई फिर मैकू तो भीतर चला गया। और जब वह भी उसके पीछे पीछे भीतर जाने लगी, तो उसे भीतर नहीं जाने दिया गया। रमा ने कई बार पति को पुकारा भी, पर उस समय तक फाटक बन्द हो चुका था। तब रमा को एकाएक ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो वह इस जगत में अकेली है। उसके पैर के नीचे से जमीन खिसक गयी, और आंखों के सामने अन्धेरा छा गया। एक अव्यक्त आतंक अनुभव होने लगा उसे।

जब वह कुछ संभली, तो उसने सोचा, कि यहीं प्रतीक्षा की जाय। कोई न कोई भीतर से निकलेगा ही तब उससे कहलाया जायगा। वह इस प्रकार सोच रही थी, कि कहीं से एक अधेड़ स्त्री उसकी तरफ आती दिखाई पड़ी। डूबने को तिनके का ही सहारा बहुत होता है। रमा उसकी तरफ बढ़ी। संक्षेप में उसने अपना सारा हाल उसे सुनाया। उस स्त्री को इस कहानी से कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

वह स्त्री महन्तजी की ही एजेन्ट थी। उसने रमा से कहा—"मेरे साथ चलो। मैं सब ठीक कर दूंगी।"

रमाने अपनी बच्ची की तरफ देखा, और फिर एक बार मठ के विशाल फाटक की तरफ, जिसके अन्दर उसका पति गायब हो गया था। फिर वह उसके पीछे पीछे चलने लगी।

उस स्त्री ने रमा को ले जाकर एक खपरैल में रखा, और उसे सीधा देकर बोली—"यहीं खाओ पकाओ।" फिर वह चलने लगी।

रमा ने व्याकुलता के साथ उससे पूछा —"और हमारा आदमी ?"

उस स्त्री ने आंख दिखाते हुए, कुछ रुखाई के साथ कहा —"हमारा आदमी, हमारा आदमी! बस, यही रट लगा रही है! जैसे मैंने तेरा ठेका ले रखा है। कह दिया कि पता लगाऊंगी। फिर भी चुप नहीं होती। तेरा जी चाहे यहां रह, नहीं तो जहां तबीयत चाहे वहां चली जा।" कहकर उसने रुखाई के साथ रमा से पूछा —"तू कौन जात की है ?"

रमा ने कहा —"कहार।"

उस स्त्री ने कहा —"फिर क्या चिन्ता है? तुम लोगों में तो यह बात तो है नहीं, कि एक ही मर्द से जनम भर नाता रखा जाय। कितने मर्द चाहती है। मैं दूंगी तुम जितने चाहेगी।"

रमा को यह बात कतई पसन्द नहीं आई। उसके जी में एक बार यह आया कि यहां से चली जाय; पर न तो उसके पास पैसा ही था और न उसमें इतना साहस ही था कि बिना टिकट रेल पर चढ़ कर वापस जाय। उसे यह भी डर था कि कहीं वह चली गयी और इधर मेकू खोजने के लिये निकले, तो बड़ी आफत होगी।

इसलिये उसने विवश होकर वहीं पर रहना स्वीकार किया। यद्यपि वह उस स्त्री के आदेश के अनुसार खाना पकाने में लग गई, पर उसके कान बराबर बाहर की ओर लगे हुए थे, कि शायद मेकू आता हो। जरा सा पत्ता भी खटकता, तो वह चौकन्नी होकर बाहर आ जाती। पर प्रत्येक बार उसे निराशा ही होती।

वह स्त्री बराबर उसके इर्द गिर्द ही डटी रही। वहां शायद और भी कुछ स्त्रियां थीं। कई बार रमा को ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे कुछ अन्य स्त्रियां उसे ध्यान से देख रही हैं, पर वह इतनी परेशान थी, कि उसने उनको ध्यान से देखा भी नहीं।

रमा ने उस स्त्री से संध्या समय पूछा—'कुछ पता लगा ?"

उस स्त्री ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

थोड़ी देर बाद रमा ने फिर उस से पूछा—"कुछ दूध मिल सकता है?"

अब की बार उस स्त्री ने उत्तर दिया। बोली—"यह तो बहुत मामूली बात है। तुम चाहो, तो दूध से नहा सकती हो।"

यह उत्तर उसे खटका। न मालूम इसमें किस बात की ध्वनि निकल रही थी। रमा ने कहा—"बच्ची के लिये थोड़ा सा दूध चाहिये।"

दोनों में इसी प्रकार बात हो रही थी, कि इतने में दो तीन साधु वहां आ गये। शक्ल सुरत से ये लोग उसी प्रकार के थे, जैसे वे साधु थे, जो उसे तथा मेकू को गांव से ले आये थे। वे लोग रमा को घूरने लगे। रमा ने इनको देखकर, यह समझा, कि शायद वे मेकू की कुछ खबर लाये हों। उसकी आंखे आशा से चमक उठीं। पर अगले ही क्षण उसने जब उनकी लोलुप आंखों की तरफ देखा, तो आशा आशंका में परिणत हो गयी।

उस स्त्री ने उन साधुओं को देख कर भी नहीं देखा। पर जब वे कुछ अधिक देर तक डटे रहे, तो उस स्त्री ने रूखाई के साथ उनसे कहा—'तुम लोग यहां से जाते क्यों नहीं, जो? महंतजी देख लेंगे, तो अनर्थ हो जायगा। अभी उन्होंने इसे देखा तक नहीं, और अभी से तुम लोग इस घर पर ललचाई आंखें डालने लगे।'

महंतजी के नाम से तीनों साधु कुछ घबराये। पर उनमें से एक, जो मसखरा था, बोला—"हमेशा प्रसाद पर तो गुजारा नहीं होता न।"

अब वह स्त्री खड़ी हो गयी। उसने आगे बढ़ते हुए कहा—"तुम लोग यहां से निकल जाओ। मैं कोई बात नहीं सुनना चाहती। महंतजी पास कर दें, तो चाहे जो कुछ करना, पर अभी तुम लोग इसके पास नहीं फटक सकते।"

उस मसखरे साधु ने पीछे हटते हुए धीरे से एक ऐसी बात कही, कि

वह स्त्री बिगड़ गयी, और साधुओं को अनाप सनाप गालियां देने लगी। साधु हँसते हुए वहां से चले गये। उस स्त्री ने चिल्ला कर साधुओं से कहा...'जाकर सेर भर दूध भिजवा देना। नई के लिये जरूरत है।'

जब रात अधिक हो गई, तो एक पेट्रोमेक्स के साथ महन्त गोकुलदास आये। वे बाहर से ही बराबर 'हरि ओम तत्सत' 'सीताराम, सीताराम।' कहते हुए आ रहे थे। खपरैल के भीतर आकर वे खड़े हो गये। रमा उस समय तक लेट चुकी थी। बच्ची शायद दूध पी रही थी। वह स्त्री फौरन उठी, और रमा को उठाती हुई बोली—"उठ, उठ महन्तजी आये हैं।"

महन्तजी का नाम सुनकर रमा हड़बड़ा कर खड़ी हो गयी। महन्तजी ने उसे लोलुप दृष्टि से देखा। वे रमा की तरफ बढ़े। उस स्त्री ने रमा को कहा—"महन्ती जी के पैर छू।"

घबरायी हुई रमा ने झुक कर महन्तजी के पैर छूना चाहा, पर महन्त जी ने हां, हां, कहकर, उसे इसके पहले ही पकड़ लिया। अब रमा महन्तजी के आलिंगन में थी।

जो चेला पेट्रोमेक्स लेकर आया था, वह उस स्त्री के साथ बाहर चला गया। जाते समय उस स्त्री ने उस खपरैल के दरवाजे को भेड़ दिया। दूर तक रमा के कराहने की आवाज सुनाई दी, पर उसकी सहायता के लिये आने वाला कोई न था। अक्सर यहां इस प्रकार का चिल्लाना कराहना सुनाई पड़ता था, पर कोई सहायता के लिये दौड़ता नहीं था। एक रामजी ही पुकार सुन सकते थे, पर वे कान में रुई डाले पड़े हुए थे, नहीं तो पता नहीं महन्तजी तथा उनके चेले उनकी क्या गत करते।

जब महन्तजी चले गये, तब भी रमा रो रही थी। वह स्त्री भीतर गयी, और उसे समझाने लगी—"अरी, पगली, रोती क्यों है? तेरा तो भाग्य खुल गया। महन्तजी जिस तिस को प्रसाद नहीं बनाते। अब तुझे किसी बात की कमी नहीं रहेगी!"

रमा ने इसके उत्तर में कुछ नहीं कहा। बड़ी रात तक वह घुट घुट कर रोती रही। पेट्रोमैक्स वहीं छूट गया था। बड़ी रात तक वह मानो उसके प्रति सहानुभूति में जलता रहा। फिर वह भी बुझ गया।

अगले दिन रमा एक दूसरे मकान में ले जाई गई। वहां उसे सोने के पिंजड़े में रखा गया। सचमुच उसे अब किसी चीज की कमी नहीं थी। महन्तजी रोज एक बार उसके पास आते। जब वे दूसरी बार रमा के पास आये, तो रमा फिर बिलखने, चिल्लाने लगी। इस पर पुराने पापी महन्त ने उस स्त्री को इशारा कर दिया। उस स्त्री ने रमा से कहा—"सैकड़ों दफा समझाया, कि तुम्हारा भाग्य खुल गया! कहां वह कहार, और कहां महन्त जी! अबकी तुम अगर चिल्लाई, तो तुम्हारी बच्ची तुमसे छीन कर अनाथालय में भेज दी जायगी!"

रमा अनाथालय का मतलब नहीं समझती थी। उसने कभी कसाई-खाना शब्द सुना था। सो उसने कल्पना कर ली, कि यह भी ऐसी ही कोई जगह होगी। वह सन्न हो गयी। पर ज्योंही महन्तजी ने उसका हाथ पकड़ना चाहा, वह रोने लगी। तब उस स्त्री ने सचमुच उस बच्ची को उठा लिया। रमा तब डर के मारे चुप हो गयी।

महन्तजी अधिक दिनों तक एक चीज से तृप्ति नहीं रहते थे। जब फिर नई चीज मिली, तो रमा की कद्र घट गयी। एक दिन रमा को उस मकान से निकाल कर, एक अन्य खपरैल में भेज दिया गया। बात यह थी, कि उसकी उत्तराधिकारिणी आने वाली थी। अब रमा चेलों के काम आने लगी। इसी तरह रमा के दिन बीतते गये।

३

मठ के भीतर भक्तदास को इस सम्बन्ध में कुछ पता नहीं लगा। वह महन्तजी से कहते कहते निराश हो चुका था। उसने अब महन्त जी

से या अन्य किसी से रमा के सम्बन्ध में कुछ कहना छोड़ दिया। वह जानता था, कि इसका कोई नतीजा नहीं होगा।

पर उसने मन में हार नहीं मानी थी। वह हमेशा सोचा करता, कि किस तरह मठ के बाहर जाया जाय। एक दिन उसने इस सम्बन्ध में अपने साथियों से कहा..."क्या बात है, जी, कि तुम लोग बेखटके बाहर जाते हो, पर मुझे बाहर नहीं जाने दिया जाता।

साधुओं ने उससे कहा—"महन्त जी से पूछ।"

एक दिन मैकू उर्फ भक्तदास ने महन्त जी से यही प्रश्न किका।

महन्त जी ने कहा — "ठीक तो है। उनका मोह छूटा है। तुम्हारे ...ी गृहस्थी की बातें हैं।" कह कर वे हहा कर हंसे, और

...समझ लिया कि अब कहने सुनने से कुछ नहीं होगा। वह ...ा तरकीबें सोचने लगा। उसने अच्छी तरह घूम कर सारी दीवारों ...ा। फिर एक दिन रस्सी के सहारे वह बाहर निकल गया।

...ह अब आजाद था। करीब एक वर्ष के बाद वह आजाद हुआ था। ...ल पन्द्रह रुपये, बारह आने के लिए वह कैद हुआ था। उसने बाहर निकल कर एक बार रात्रि कालीन आकाश की ओर वह देखा। मानो वह इस प्रकार यह पढ़ने की कोशिश कर रहा है, कि इस बीच में क्या क्या घटनायें घटी। उसके मन में बस, एक ही चिन्ता थी...रमा और उसकी बच्ची! वे कहां गयीं?

वह पैदल चल कर अपने गांव पहुंचा। वहां ज्ञात हुआ कि रमा वहां लौट कर नहीं गयी। वह इधर उधर रिश्तेदारियों में गया। उन स्थानोंपर भी रमा का पता नहीं था। फिर भी उसने खोजना जारी रखा। एक दिन वह इसीप्रकार एकगांव से दूसरे गांव जा रहा था; कि रास्ते में पुलिस ने उसे गिरफतार कर लिया। उसकी समझ में यह नहीं आया, कि

उसकी गिरफ़्तारी क्यों हुई है ? बाद में एक पुलिसवाले ने ही उस पर रहम खाकर, उसे बताया, कि महंतजी के पन्द्रह रुपये बारह आने कि नालिश पर वह पकड़ा गया है।

दरोगा ने कहा—"साले, इतने दिनों तक कहां भागा हुआ था ? मैंने तमाम इलाका ढुंढवा डाला, पर तेरा पता नहीं लगा।"

मैकू इस पर क्या कहता ? वह चुप रहा। मुकदमे में एक दिन महन्तजी गवाही में आये। दो मिनट की गवाही थी। गवाही के बाद महन्तजी ने मैकू से कहा—"साले, ठाकुरजी का पैसा मारने चला था ! भला यह कैसे हो सकता था ?"

मैकू सिटपिटाया खड़ा रहा। उसकी जबान पर कुछ बातें आईं, पर उससे कुछ कहते न बना। उसे दीवानी हिरासत में भेज दिया गया हिरासत में उसे छः महीने तक रहना पड़ा।